भटकाव

भटकाव

महाश्वेता देवी

हिन्दी रूपान्तर
जगत शंखधर



राधाकृष्ण

ऋत्विक को

देवादिदेव उस समय भी कालाटोप में था, इसीलिए जब ईप्सिता का तार डलहौजी में आया तो उसे आते ही नहीं मिला। ईप्सिता को डलहौजी टूरिस्ट ऑफिस का पता दिया हुआ था। देवादिदेव ने कहा था, 'चार दिन डलहौजी में रहूँगा, उसके बाद कश्मीर जाऊँगा। कश्मीर घूमने-फिरने में, समझ लो, कुछ दिन लग जायेंगे।'

डलहौजी के बाद देवादिदेव कश्मीर ही जाता किन्तु तार सारा प्रोग्राम उलट-पलट, तूफान उठाकर चला गया।

कालाटोप जाने का कोई इरादा न था। डलहौजी में रहने की बात कहकर ही देवादिदेव आया था। पठानकोट में हिमाचल प्रदेश के टूरिस्ट ऑफिस में बिलकुल भीड न थी। ज्यादातर लोग कश्मीर जाते हैं, सारी भीड कश्मीर टूरिस्ट ऑफिस में घिरी ही रहती है। हिमाचल के टूरिस्ट ऑफिस में काम करने वाला लडका बहुत अच्छा था, एकदम सज्जन। डलहौजी के बारे में बहुत उत्साह से बता रहा था।

—डलहौजी तो बंगालियों के लिए तीर्थ है।

—क्यों ?

—रवीन्द्रनाथ वहाँ रहे थे।

—सो तो रहे थे।

—डलहौजी बहुत शांत एकांत स्थान है।

—शांत एकांत स्थान की ही तलाश में हूँ।

—आप क्या...?

—लेखक हूँ।

—नाम ?

—देवादिदेव वसु।

देवादिदेव को आघात लगा, यह आदमी अखिल भारतीय प्रसिद्धि-प्राप्त लेखक का नाम नहीं जानता !

—क्या लिखते हैं ?

—कहानी, उपन्यास।

—अच्छा !

—डलहौजी की बस कब मिलेगी ?

—आपके लिए ही रुकी हुई है।

—डलहौजी बहुत भीड़-भरी जगह तो नहीं है ?

—नहीं, नहीं ! मैं तो यही कहूँगा कि डलहौजी सबसे खूबसूरत पहाड़ी जगह है। बर्फ़ से ढँके पहाड़ देखने लोग कौसानी जाते हैं, मगर डलहौजी धौलगिरि रेंज के बहुत समीप है। चारों ओर बर्फ़ से ढँके पहाड़ हैं। ओक के बड़े-बड़े पेड़ मिलेंगे। टैगोर का मकान सबसे ऊँची जगह पर है।

बस में डलहौजी के मुसाफ़िर कम ही थे। कई पंजाबी लड़के थे। वे डलहौजी में खेतीबाड़ी करते थे। पठानकोट से खेती का बहुत सारा सामान लेकर लौट रहे थे। उनमें से एक बोला, 'किसी दिन मेरा फ़ार्म देखने आइयेगा। बिलकुल मॉडर्न फ़ार्म है।'

देवादिदेव ने सोचा था कि डलहौजी में ही ठहर जायेगा। लेकिन डलहौजी पहुँच कर समझ में आया कि डलहौजी पुरानी, मरणोन्मुख पहाड़ी नगरी है। रहने-बसने की जगह है। टूरिस्टों के आने लायक जगह नहीं है। कोई चमक-दमक, चहल-पहल नहीं है। बिखरी-बिखरी-सी जगह है। घूमने के लिए एक ही सड़क है। लोग कम हैं। आँखों के आगे बार-बार ईसाइयों का क़ब्रिस्तान, गिरजाघर या अँग्रेजों के परित्यक्त बँगले दिखायी पड़ते हैं। ओक वृक्षों के पत्तों से सदा ओस टपकती रहती है। टूरिस्ट लॉज में भी मच्छर काटते रहते हैं।

—का देखियेगा ?

टूरिस्ट लॉज का चौकीदार भी डलहौजी से ऊबा हुआ था, 'का देखियेगा ! टागोर का बँगला, उनका राजमहल ?'

देवेन्द्रनाथ के यादगार वाले बँगले की चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते हँफनी चढ़ रही थी। बँगले के बरामदे में ध्यानमग्न रवीन्द्रनाथ की बात का ध्यान उसे बहुत पहले से था। देवेन्द्रनाथ का सूर्य निकलने से पहले बरफ़ीले पानी से स्नान और दूध पीना बहुत ही अच्छा था, ईश्वर के चारों ओर उनका चक्कर लगाना भी अच्छा था, किन्तु जमींदारी की आय होने से ही यह सब संभव था। ईश्वर यदि सर्वत्र हैं तो उन्हें मैदान में बैठकर भी पाया जा सकता है। डाँडी में सवार होकर चोटी पर चढ़े बिना भी काम चल सकता है। इस ऊँची जगह पर बैठकर आराधना करना बड़ा अच्छा काम है, बशर्ते दस-बीस पहाड़ी नौकर पहाड़ की उतराई-चढ़ाई निरंतर उतर-चढ़कर सुख-सुविधा का सभी सामान जुटाते रहें !

यह सब-कुछ ध्यान में आते ही देवादिदेव को लगा कि बात ठीक ढंग से नहीं सोची जा रही है और उसने रवीन्द्रनाथ के विषय में सोचने की कोशिश की। परिणामस्वरूप उसके मन के परदे पर सत्यजित राय के 'रवीन्द्रनाथ' वृत्तचित्र में रवीन्द्र की भूमिका करने वाले बच्चे का चेहरा उभर आया और वह चिढ़कर पहाड़ी से नीचे उतर आया।

चारों तरफ़ पहाड़, ढेरों बर्फ़, प्राकृतिक सौन्दर्य का फैलाव। इन सबके बीच उसे बेचैनी हो रही थी। टूरिस्ट लॉज में लौट कर थोड़ी शराब पीने से चैन पड़ा। थोड़ी हँसी, थोड़ा शोरगुल, थोड़े-से रेडियो के गानों के लिए उस भीगी रात में उसका मन व्याकुल हुआ और तभी अचानक किसी नारी-कंठ के हाहाकार करके रोने से वह चौंक गया। पता लगा कि चौकीदार की सास थी। चौकीदार की साली बीमारी से मर गयी थी और लड़की के मरने की खबर पाकर वह रो रही थी। देवादिदेव को लगा था कि उसके मन में उसके प्रति कोई संवेदना नहीं है। उसे लगा कि इस तरह रोना-धोना असभ्यों के शोर-चीत्कार की तरह है। सवेरे उसने देखा कि चौकीदार की सास से सहानुभूति दिखाने के लिए बहुत-सी औरतें आ रही थीं, सभी रोने के लिए तैयार। उसे डलहौजी असहनीय लगने

लगा। उसने सोचा, सबेरे ही वह कालाटोप के फ़ारेस्ट-बँगले को बुक करा लेगा।

—पैदल जाना पड़ेगा।

—बस नहीं है?

—नहीं।

—और कोई सवारी?

—नहीं।

—रास्ता कैसा है?

—अच्छा ही है। कुछ साल पहले कालाटोप में आल इंडिया स्पीकर्स कान्फ्रेंस होने की बात थी। उसी के लिए कालाटोप तक सड़क बनवायी गयी थी।

—पैदल ही जाऊँगा।

—हाँ, हाँ, बहुत अच्छी सड़क है।

—पैदल चलना मुझे पसन्द है।

देवादिदेव को पैदल चलना ख़ूब आता है। सुदूर अतीत की बात है, जब उसे पैदल चलना अच्छा लगता था। लेकिन एक ज़माने से उसका पैदल चलने का अभ्यास बिलकुल छूट गया था। चलते-चलते ख़याल आया कि आजकल वह बिलकुल पैदल नहीं चलता। जब पैसे नहीं थे, तभी चलता था। अब वह रिक्शा, टैक्सी, मिनी बस आदि में चलता है। ट्रामों और बसों में नहीं चढ़ पाता, भीड़ में तकलीफ़ होती है। उसकी पत्नी ईप्सिता अब भी पैदल चलती है। पैदल बाज़ार जाती है, बाज़ार से सामान आदि लाती है, बच्चों के साथ इधर-उधर भी पैदल ही जाती है। चलते-चलते देवादिदेव को यह भी याद आया कि वह बच्चों के साथ कभी कहीं नहीं जाता—चिड़ियाघर, सिनेमा, खेल के मैदान, लेक। लेकिन बच्चों के साथ रहने की इच्छा देवादिदेव में बराबर बनी रहती थी। बच्चों से मिलना-जुलना अमूल्य ज्ञान का स्रोत बन जाता है। देवादिदेव को समय नहीं मिलता था। उसका ज्यादातर समय बाहर ही बीतता था। देवादिदेव को वक़्त ही नहीं मिलता था। 'वक़्त निकालना पड़ता है,' ईप्सिता क्लान्त और अनिच्छुक स्वर में कहती थी। ईप्सिता नहीं समझेगी। देवादिदेव

वसु की मजबूरी है कि उसे हमेशा बाहर ही समय बिताना पड़ता है।

पैदल चलते-चलते पहली बार बर्फ़ देखी। पत्थर पर से बर्फ़ फिसल रही थी, सरकती आ रही थी। ऊपर से धूल हटाने पर उजली-सफ़ेद! खाकर देखने की इच्छा हुई, लेकिन खायी नहीं। वह अपने को हमेशा बाहरी संक्रमण से यत्नपूर्वक सुरक्षित रखने की कोशिश करता है। फिर बर्फ़ खाने से गला बैठ सकता है। वैसे बर्फ़ कितनी अच्छी लग रही है! बर्फ़ पर क्या देवादिदेव अपना नाम न लिखेगा? बर्फ़ पर नाम लिखने की बात मन में आते ही उसे याद हो आया। समुद्र के किनारे बालू पर वह अपना नाम लिख रहा है रेशमा दुर्रानी देख रही है। वह अफ़गान लड़की थी। गण नाट्य संघ की कार्यकर्त्री थी। नाचती थी। नाम लिखते देखकर रेशमा ने देवादिदेव से कहा था, 'नार्सिसस!'

देवादिदेव ने उँगली से लिखा—देवादिदेव। उसके बाद एक पत्थर पर बैठ गया और उसने सिगरेट सुलगा ली थी। डलहौज़ी वापस चला जाये? लौटना ही ठीक रहेगा। पैदल-पैदल कालाटोप? अच्छा, वह आँखें मूँदे और कहीं से एक गाड़ी आकर खड़ी हो जाये! फिर ड्राइवर कहे, 'कहाँ जा रहे हैं?'

अचानक एक जीप आकर रुकी। जैसे देवादिदेव ईश्वर हो और उसके इच्छा करते ही जीप आ गयी हो। सेना-विभाग की जीप थी। ड्राईवर जवान अफ़सर था। तभी देवादिदेव को ध्यान आया कि कालाटोप के पास ही आर्मी सेंटर है।

ड्राईवर ने सिर बाहर निकाला, 'कहाँ जा रहे हैं?'

—कालाटोप।

—आइये।

—आप?

—वहीं।

—तकलीफ़ तो न होगी?

—नहीं, आइये।

देवादिदेव जीप में बैठ गया। लड़का उसे कालाटोप पहुँचा देगा।

लेकिन राह में लड़के ने उससे कोई बात न की, ज़रा भी अंतरंग न हुआ। सिर्फ़ एक बार पूछा था, 'क्या करते हैं?'

—लिखता हूँ।

—क्या लिखते हैं?

—कहानी, उपन्यास।

—नाम?

—देवादिदेव वसु।

—देव वसु!

—हाँ।

—आपकी जीवनी अंग्रेजी में निकली है?

—हाँ। पढ़ी है?

लड़के ने कोई जवाब नहीं दिया। आँखें सिकोड़े वह सामने की ओर देख रहा था। सामने मोड़ था। उसने एक हाथ से माचिस जलाकर सिगरेट सुलगायी। उससे पूछा तक नहीं। लड़के के मन में जैसे अचानक विद्वेष जाग उठा हो। क्यों? यह देवादिदेव नहीं बता सकता था। लेकिन उसे बखूबी पता चल जाता है कि कब किसके मन में उसके प्रति विद्वेष पैदा हो जाता है। देवादिदेव की त्वचा और रोम बेतार के तारों की तरह अचानक सक्रिय हो जाते हैं। ट्रेन में, ट्राम में, बस में, चाय की दूकान पर, हर जगह कोई-न-कोई उसे विद्वेष और क्रोध की नज़रों से देखता है, अविश्वास की दृष्टि से देखता है।

उसे सब पता चल जाता है। वह सबको पहचानता नहीं है। लेकिन जान लेता है कि उसकी तरफ़ कोई गुस्से से, नाराजगी से देख रहा है। देखता है और उसे नकार देता है। उसकी उपेक्षा कर ने सिनेमा, राजनीति, मुहल्ले की लड़कियों के बारे में जोर-जोर से बातें करने लगते हैं। जो उसकी उपेक्षा करते हैं वे अकसर अभिज्ञ और कम उम्र के लौंडे होते हैं। देवादिदेव समझ नहीं पाता कि जवान लोग उस पर अविश्वास क्यों करते हैं?

क्या उसके चेहरे पर लिखा रहता है कि वह देवादिदेव वसु है? क्या उसे देखते ही पता लग जाता है कि उसकी पत्नी ईप्सिता चलते-फिरते

उस पर ताने मारती है ? लगता था कि उसके चारों ओर बुना हुआ एक तरल-जाल है जो साथ-साथ चलता-फिरता है। तरल-जाल के स्पर्श से ही लोगों को पता चल जाता है। अकसर लोग उस पर अविश्वास करते हैं, इसीलिए वह दुःखी और मन-ही-मन बुझा-बुझा रहता। संदेह और आत्म-विश्वास का अभाव उसे हमेशा सालते रहते। यह बात वह लोगों के बीच जाकर ही जान पाया है। देखते ही अविश्वास, आक्रोश, गुस्सा—नकार का भाव ! आजकल वह बहुत ही अनिश्चय की मनःस्थिति में है। मछली खरीदते समय उसे लगता कि अभी यह मछली वाला कहेगा, 'पैसा लीजिये, मछली लौटा दीजिये। आप महाशय नकारे हुए आदमी हैं।'

अभी तक किसी दिन ऐसा नहीं हुआ है, पर हो भी सकता है। उसे अपना अस्तित्व बड़ा भयावह लगता। किसी भी विषय में आत्मविश्वस्त रूप से सोचना संभव न था। बहुत डर लगता कि कहीं कभी भी कोई अपमानित करके चला न जाए। गाड़ी रोक कर कोई उस पर थूक देगा, बस में निशाना साधकर कोई पान की पीक उसके कपड़ों पर उगल देगा। बस को आया देखकर कोई जानबूझकर जलती हुई सिगरेट [illegible] की टेरी-कॉट पर छोड़कर बस में चढ़ जाएगा।

देवादिदेव ने जो भी किया सब ग़लत, ईप्सिता की भाषा में सब 'सुपरिकल्पित बदमाशी' थी। लेकिन इस लड़के के भीतर से विद्वेष का ताप क्यों निकल रहा है? यह तो पंजाबी तरुण अफ़सर है, देवादिदेव से पूरी तरह अनजान, उसकी दुनिया से परे का आदमी।

वे कालाटोप पहुँचे। देवादिदेव उतरकर खड़ा हो गया। लड़के को धन्यवाद देने चला। लड़के ने अदृश्य बन्दूक से उसकी बात को बीच में ही हवा में उड़ा दिया। गोली खाकर देवादिदेव की धन्यवाद की बात अचानक लुढ़क पड़ी। लड़का बोला, 'शंकरदयाल मेरा दोस्त है। मैं आपको पहले से जानता तो गाड़ी पर न बिठाता।'

देवादिदेव खड़ा रह गया। लड़का साईकिल की चेन-लिपटी मुट्ठी से जैसे उसके मुंह पर घूंसा मार गया हो। मुंह टूट गया हो। अदृश्य रक्त बह रहा हो। डरकर देवादिदेव ने चेहरे पर हाथ फेरा। वह आतंकित हो उठा। लड़का चला जा रहा था। देखने में उसकी गरदन किसकी तरह लग रही थी? कौन ऐसे ही गरदन टेढ़ी करके सोचते हुए चलता था? वह कौन है? देवादिदेव को याद न आया। लेकिन उसके मन में पीड़ा घुमड़ उठी। लड़के की गरदन किसकी तरह है, यह याद आने से पहले ही देवादिदेव के मन में सहज स्नेह की अनुभूति जागी थी। लड़के के साथ बातें करने की तबीयत हुई थी। लेकिन लड़का यह सब-कुछ न जान पाया। उनके प्रति मन में निर्मम आक्रोश और अविश्वास लिये ही चला गया। जिसे तुम क्षण-भर या चिरकाल के लिए मित्र बनाना चाहो, वह तुम्हारे मन की वास्तविक बात ही न समझ सके...समझना ही न चाहे...आज की दुनिया में मनुष्य के जीवन में इससे बड़ी क्षति कौन-सी हो सकती है? कोई किसी को स्पर्श नहीं कर पाता। छूना नहीं चाहता। साथ-साथ चल सकते हो, जीप पर सट कर बैठ सकते हो...लेकिन दोनों के बीच दो नक्षत्रों के मध्य जैसी महाविश्व की दूरी रह जाती है। लाखों-करोड़ों बरस बाद दो नक्षत्रों का एक-दूसरे के समीप आना दुर्घटना कही जायेगी। लेकिन दुर्घटना, दुर्घटना ही होती है। उससे कोई नियम का सूत्र नहीं निकाला जा सकता।

लेकिन लड़का उसे क्यों नकार कर गया? शंकरदयाल का मित्र

होने के कारण ? उसने शंकरदयाल का क्या बिगड़ा था कि शंकरदयाल का मित्र देवादिदेव से घृणा करता ? क्यों घृणा करता ?

शंकर दयाल !

शंकरदयाल— ऊँचाई पाँच फीट दस इंच। रंग गोरा। नाक चिपटी। होंठ मोटे। हब्शियों-से बाल। आँखें बादामी। पहचान की निशानी—बायीं भौंह पर चोट का निशान। बचपन में गिर गया था। दिल्ली में पैदा हुआ। पिता कृषि विभाग में बाबू थे। एक मामा की सहायता से हैदराबाद में लिखना-पढ़ना हुआ। एम० ए० अर्थशास्त्र में पढ़ता था। तभी गोपाल कृष्णन से परिचय हुआ, और घनिष्ठता बढ़ी। गोपालकृष्णन आंध्र के इन्द्रपुरम् एजेंसी में गिरिजन आदिवासी क्षेत्र में काम करता था। बाद में, गिरिजन विद्रोह का वह नेता भी बना। 1969 में गिरिजन आंदोलन में गोपालकृष्णन ने बहुत मदद दी और अपनी पत्नी को लेकर गिरिजन क्षेत्र में ही रहने लगा। इसी गोपालकृष्णन के साथ छुट्टियों में शंकरदयाल श्रीकाकुलम गाँव गया था। वहाँ से छुट्टियों के बाद वह राजनीति में उग्रपंथी बनकर लौटा था। वह बहुत ही मेधावी छात्र था। बहुत अच्छी अँग्रेज़ी लिखता था। दक्षिण और उत्तर-भारत के विभिन्न अखबारों में दक्षिण की पर्वतीय ग्रामीण अर्थनीति के विषय पर उसके कई लेख बहुत प्रशंसित हुए। गोपालकृष्णन के साथ उसकी घनिष्ठता से उसके मामा डरने लगे और उन्होंने कोशिश करके दिल्ली की एक प्रकाशन संस्था में उसे काम दिला दिया। दिल्ली आने पर शंकरदयाल का परिचय नरसिंहम पिल्लई, अमिताभ दुबे, आनन्द राम से हुआ और उसने 'द सालिमेंट' नाम से एक अखबार निकाला। उक्त पत्र का उद्देश्य नाम के लिए साहित्य-चर्चा थी, लेकिन उसमें गोपालकृष्णन और कई उसी जैसे बहुत-से उग्रपंथियों की कहानियों और कविताओं के अनुवाद के अलावा और कुछ प्रकाशित न होता। शंकरदयाल के अनुवादों को बड़ी प्रसिद्धि मिली। वह असाधारण अनुवाद करता था।

बात बहुत पुरानी नहीं थी। आपात-स्थिति चल रही थी। इ

पहले की बात याद है क्या ? अब सन् 1979 है। अब भी तो आपात-स्थिति है। देवादिदेव को उस दिन की कल्पना करके न जाने क्यों भय लगता था, जिस दिन आपात-स्थिति नहीं रहेगी !

शंकर असाधारण अनुवाद करता था, इसीलिए देवादिदेव ने उससे अपनी जीवनी का अँग्रेजी में अनुवाद कराना चाहा था। अपनी अँग्रेजी पुस्तक के प्रकाशक कमलेश जैन से उसने कहा, 'शंकरदयाल से अनुवाद कराओ।'

—शंकरदयाल ?

—तुमसे परिचय नहीं है ?

—वह तो है।

—तब फिर ?

—वह बहुत जिद्दी लड़का है।

—अरे, जरूर कर देगा।

देवादिदेव यह सोच भी नहीं सकते थे कि कमलेश की ओर से टाल-मटोल क्यों है ! देवादिदेव वसु की आत्मकथा का अनुवाद करना शंकर का सौभाग्य होगा। कमलेश ने कहा, 'उससे बात कर लूंगा।'

कई दिन बाद कमलेश ने कहा, 'शंकर मेरे आफ़िस आयेंगे, आप भी आयें।'

शंकर को देखते ही देवादिदेव को डर लगा। बासठ बरस की उम्र होने पर इस तरह डर लगे ! योग्य, आत्मविश्वासी युवकों को देखकर उसे डर लगता। वे इतने आत्मविश्वासी कैसे हैं ?

शंकर किसी तरह काम की बात पर नहीं आना चाहता था।

—अच्छा बताइये, आप किस तरह यह सब-कुछ कर लेते हैं ?

—क्या करता हूँ ?

—जब क बाबू के अख़बार में लिखते हैं तो बहुत ही रसीली उत्तेजक, मोहक कहानी लिखते हैं। जब ख बाबू के पत्र के लिए लिखते हैं तो बहुत ही प्रतिबद्ध रचना लिखते हैं। बिलकुल दूकानदारी का-सा हिसाब।

—तुम्हारा यह कहना सही नहीं है।

—क्यों ? समझा दीजिये।

—रचना तो हृदय के भीतर बनती है। जब जो रचना आयी...।

—प्लीज, इस समय अपनी रचना-प्रक्रिया की थ्योरी मत चालू कीजिये।

—तुम मेरा लिखा हुआ पढ़ते हो?

—नहीं।

—अँग्रेज़ी में भी प्रकाशित होता है।

—आपके लिखे को पढ़ना क्या सम्भव है?

—तुम्हारी तरह के लड़के को प्रमुख पात्र बना कर...।

—पता है 'शरत् के बाद हेमन्त'—लेकिन बात बनी नहीं।

—लेकिन किताब ..।

—किताब की प्रशंसा हुई है, यही न? मेरे लिए उसका कोई महत्त्व नहीं। आप एक स्वार्थ के लिए खरीदे गये हैं। आपके पाले हुए पाठक आपको लेकर वाहवाही करेंगे ही। छोड़िये उन बातों को।

—लेकिन मैं तुम्हारा एडमायरर हूँ, प्रशंसक हूँ।

—यह मेरा दुर्भाग्य है।

—मैंने सोचा था कि...।

—आपकी आत्मकथा?

—हाँ।

—आप चाहते हैं कि मैं उसका अनुवाद करूँ?

—हाँ।

—क्यों चाहते हैं?

—भाई, तुम ही कर सकोगे, और किसी से न होगा।

—क्यों? व्यवस्था के पालतू 'विद्रोही' लेखक की चालाक आत्मकथा का अनुवाद करने के लिए क्या पालतू अनुवादक नहीं मिल रहा है? रवि चौधरी तो है! तमाम बड़े-बड़े अखबारों का पालतू और विद्रोही भी!

—तुम ही कर दो।

—आप मुझे जानते नहीं, पहचानते नहीं। मेरा विश्वास है कि अँग्रेज़ी की पढ़ाई कर लेने पर भी आप अँग्रेज़ी अच्छी तरह से नहीं जानते हैं। मेरी धारणा है कि अँग्रेज़ी, अँग्रेज़ी बनी या नहीं, यह आप औरों से जान लेते हैं। मेरी यह भी धारणा है कि इधर मेरे कई अनुवादों को बड़ा नाम

मिला है, ऐसा आपने सुना है। आप जानते हैं कि नयी वामपंथी पीढ़ी ने आपको एक तरफ़ रख दिया है। मुझसे अनुवाद कराकर आप उनके आगे मेल का हाथ बढ़ाना चाहते हैं। नहीं, मैं ऐसी कारगुजारियों में शामिल नहीं होता, महाशय !

देवादिदेव की समझ में नहीं आ रहा था कि उनके मन में यह जिद क्यों समायी हुई है ? उन्हें ऐसा क्यों लग रहा था कि जिस तरह भी हो, उसे राजी करना ही होगा।

कमलेश बैठा-बैठा हँस रहा था, 'तुम ज़रा सोच कर बताओ, शंकर !'

—आपने मेरा लिखा क्या पढ़ा है ?

—तुम्हारी कविता।

—वह गद्य तो नहीं है।

—गोपालकृष्णन की कहानी का अनुवाद।

—आप उसका नाम ले रहे हैं ?

—वह तो बहुत गर्व करने योग्य व्यक्ति है।

शंकर बोला, 'कमलेश, सेशन बड़ा अच्छा रहा। अब इस सेशन को आगे बढ़ाने की सुविधा के लिए मैं गोपालकृष्णन की सच्ची कहानी सुनाना चाहता हूँ। आप ध्यान से सुनें।'

कमलेश बोला, 'सुनाओ, यार !'

—सुना रहा हूँ। गोपालकृष्णन कारकोंडा गांव की किंवदंती था। गिरिजन संग्राम का नेता। 1959 में इन्द्रपुरम् एजेन्सी में गिरिजन संग्राम आरंभ हुआ था। गिरिजन पहाड़ी आदिवासी हैं। जंगल विभाग के अफ़सर लोग उनके हल से खेती करने के तरीक़े में रोड़े अटकाते। इन्द्रपुरम् एजेन्सी के बारे में पता है ?

—तुम ही बताओ।

—उसका क्षेत्रफल सात सौ वर्ग मील है। उसमें तीन सौ गांव हैं। जनसंख्या है दो लाख। आंध्र की आबादी का दोसौवां भाग।

देवादिदेव ने मन-ही-मन नोट किया कि शंकरदयाल का होमवर्क कितना पक्का है। जानने का खुद प्रयत्न किये बिना क्या इतनी बातें जानी जा सकती हैं ?

—पहाड़ी आदिवासी लोगों ने जंगल वि
में उचित न्याय माँगा था। वे जब खेतिहर म
में आठ आने से ज्यादा मजूरी नहीं मिल
अधिक अनाज न मिल पाता। महाजन और
पर भी उनकी गिरवी रखी जमीन वापस न
कानून-कचहरी करना तब असंभव था।
गुस्सा था। जगह बदल-बदल कर खेती करने और अपन ...
बुझाने की उनकी हरकत के कारण सरकार उनसे नाराज थी। सरकार की आँखों में वे अपराधी थे, जरायम-पेशा।

—ऐसा सब जगह होता है, पता है शंकर?

—मैंने एक क्षेत्र के बारे में सुना है। इस सबके विरुद्ध 1959 में उनकी लड़ाई के बारे में भी जाना है। गोपालकृष्णन उनका नेतृत्व कर रहा था। वह संग्राम कितना सफल रहा, गिरिजन संघम् कितना शक्तिशाली बना, वे सब बातें अब इतिहास के दस्तावेज हैं। वे बातें सबको मालूम हैं। जो बात सबको नहीं मालूम है वह यह है कि गोपालकृष्णन ने उस लड़ाई को थमने नहीं दिया। 1968 में इन्द्रपुरम् एजेंसी में पुलिस आ धमकी। नतीजा—पुलिस की सख्त कार्रवाई, एक के बाद एक गाँव में विनाशलीला! पुलिस जब विनाश करने का निश्चय करती है तो वह विनाश बहुत प्रभावशाली हो सकता है।

—यह क्या मुझे मालूम नहीं है?

—1968 के अप्रैल के बाद वह असल नक्सलवादी हो गया।

कमलेश बोला, 'यार, ये सारी बातें यहीं बताओगे?'

—हाँ।

—कहो। कहानी ही तो कह रहे हो।

—गोपालकृष्णन उस वक्त कलकत्ता आया था। देवादिदेव, चौंक क्यों पड़े? आपने भी उससे मुलाकात की थी। वह दूसरे काम से आया था। आया था किसी से मार्ग-निर्देशन लेने। अरे! पसीना क्यों आ रहा है?

—नहीं, कहो।

—उसकी दो कहानियाँ आपके पास भी थीं, अंग्रेजी में अनूदित।

मिला है, ऐसे वह...।

—मजे की बात है, उन्हें दवा देने की आपकी कोशिश के बावजूद ने ही उनका अनुवाद किया था। मेरे पास प्रतियाँ थीं। परिणामस्वरूप 'अन्ना चेट्टी की माँ' और 'मेरा बेटा' दोनों ही कहानियाँ संकलन में प्रकाशित हुई।

—कहते चलो, शंकर...!

—गोपाल आपसे क्यों मिला था, पता है ?

—नहीं।

—आपके बारे में उसके विचार बहुत ऊँचे थे।

—ओह...!

—मुझसे उसकी बातचीत इसके बाद ही हुई थी। उम्र में वह मुझसे बहुत बड़ा था। खूब हँसता था। उसकी पत्नी कुन्ती भी उसकी योग्य कॉमरेड थी। तफ़सील में नहीं जाऊँगा। वे दोनों बस्तर में पकड़े गये।

—मालूम है।

—क्यों नहीं मालूम होगा ? आपको तो सभी कुछ का पता करना पड़ता है। पता न होने से उस साल पूजा के मौक़े पर 'गोपाल मेरा भाई' लेख कैसे लिखते ?

—शंकर; तुम बहुत कठोर हो।

—शायद...लेकिन आप बहुत अस्थिर हो रहे हैं।

—मैं...!

—पता है, गोपाल और कुन्ती कैसे मरे ? उन्हें पकड़ कर बंगाल लाया गया समुद्र के किनारे। पहाड़ी के सामने खड़ा करके उन्हें गोली मार दी गयी। गोपाल और कुन्ती की लाशें पानी में फेंक दी गयीं। समुद्र ने उन्हें लौटा दिया था।

—पता है, माने, बाद में मालूम हुआ।

—गोपाल लेखक समिति का सदस्य था। वह कई बार दिल्ली में सभा-समिति की बैठकों में शामिल हुआ था। कमलेश, गोपाल की मौत का विरोध करने के लिए मैंने भारत के प्रमुख लेखकों के हस्ताक्षर इकट्ठा किये थे। देवादिदेव ने उस पर दस्तख़त नहीं किये।

—सुनो शंकर, उसमें एक बात है...।

—दस्तख़त नहीं किये, और यह बात आत्मकथा में स्वीकार भी न की। आपकी आत्मकथा में गोपाल अपने काम में आया था और चला गया। आपने और तमाम बातों की तरह अपनी जीवनी में गोपाल का भी उपयोग किया है। सब-कुछ आपके उपयोग के लिए है।

—सुनो शंकर, ज़रा सुनो...!

—नहीं देवाधिदेव, कुछ अपराध अक्षम्य होते हैं। आप गोपालकृष्णन की मृत्यु के विरोध में हस्ताक्षर न करेंगे, क्योंकि आपको सरकार ने एक ज़रूरी काम में लगा रखा है। वामपंथी राजनीति के लड़कों में से जो निकलते हैं, उनको आप स्वीन करते हैं।

—बहुत आगे बढ़े जा रहे हो, शंकर!

—सबूत चाहते हैं?

—तुम सानन्द राय से सुनकर ये बातें कह रहे हो।

—इसीलिए सानन्द राय विश्वास-योग्य नहीं है?

—सानन्द पर तुम विश्वास करते हो?

—समझा।

—क्या समझे?

—आप दिल्ली क्यों आये हैं

—नहीं शंकर, नहीं।

—ये बातें देवकी बनर्जी से कहिये।

—मुझे तुम ग़लत समझ रहे हो।

—गोपालकृष्णन के बारे में झूठी बातें क्यों लिखीं?

—सदाशिव चेट्टी के कारण। सारी बातें लिखने पर क्या सदाशिव चेट्टी अपना काम कर पाता?

—वाह, वाह! कैसी अफ़सोस की बात है? बनर्जी भी आप पर पूरी तरह विश्वास नहीं करते।

—क्या कहते हो?

—सदाशिव चेट्टी गिरफ़्तार, निहत्था, टुकड़े-टुकड़े किया गया, बगान में उसके मांस से सियार-गिद्धों की दावत की गयी।

—नहीं !

—तेरह तारीख़ को। आज सत्रह है।

—इसीलिए आत्मकथा में...।

—अपने को विश्वसनीय सिद्ध करने का यह हास्यास्पद प्रयत्न क्यों? आप जैसे लोगों को कौन नहीं जानता? कभी आप सच्चे थे, लेकिन आज आप झूठे और एकदम झूठे हैं। गोपालकृष्णन की बात आपने जिस तरह आधी कही, आधी बचा गये—निश्चय ही, आपकी आत्मकथा भी इसी तरह के अर्द्धसत्यों से भरी पड़ी है?

—तुम ग़लत कह रहे हो।

—कमलेश को मालूम था कि मैं आपकी किताब का अनुवाद न करूँगा। सुनिये, मैंने उससे आपकी किताब इसलिए माँग ली थी ताकि मैं आपके सामने बैठकर उस पर बातें कर सकूं। महाशय, आप लोगों से मैं नफ़रत करता हूँ। कभी कुछ सच बातें लिखी थीं। उन्हें सुनाकर सच्चे, विवेकपूर्ण, प्रतिबद्ध लेखक के रूप में लोगों की श्रद्धा प्राप्त करना चाहते हैं और साथ ही शक्ति का व्यापार भी करते हैं। आप जैसे महान लेखक की आत्मकथा मेरे निकट, देवादिदेव बोस, रद्दी काग़ज़ों के अलावा कुछ नहीं है।

शंकरदयाल कमलेश से 'जा रहा हूँ' कहकर चला गया। दरवाज़े के पास पहुँच उसने घूमकर खड़े-खड़े कहा था, 'कमलेश उस किताब का अनुवाद करायेगा, छापेगा। वह तो प्रकाशक है। जो बिकता हो वही छापता है। पर समझ रखिये, वह भी आप लोगों पर हँसता है।'

शंकर चला गया था। कमलेश जैन ने कहा था, 'बहुत गुस्सेवर बद-मिजाज लड़का है।'

—तुमको मालूम था कि वह अनुवाद न करेगा? जान-बूझकर तुमने मेरा अपमान कराया?

कमलेश बोला, 'आप भी तो दूसरों की तरह ही हैं। हमेशा आप जो करें, सब उसका समर्थन करते रहें क्या! विरोधी विचारधारा रखने का क्या किसी को हक़ नहीं? शंकर को भी अपनी विचारधारा में विश्वास रखने का पूरा अधिकार है।'

—तुम्हारे अलावा भी मेरे प्रकाशक हैं।

—मेरी तरह रुपये कोई न देगा। फिर इतना विज्ञापन कौन करेगा?

—तुम भी मुझे लेकर...।

—अच्छा दादा! यह तो मजाक की बात है। मैं जानता हूँ, आप सब जगह प्रकाशकों को बज्रमूर्ख, मारवाड़ी मानसिकता का आदमी कहते फिरते हैं। कैसा मजाक होता है, जानते हैं? आप मोनोपली प्रेस को गालियाँ देते हैं, प्रकाशकों को गाली देते हैं, शायद व्यवस्था को भी कोसते हैं...आप माने आप लोग। और यह मोनोपली प्रेस, यह प्रकाशक, यह व्यवस्था—इनके बिना आप लोगों का काम नहीं चलता।

—तुम क्या कहना चाहते हो?

—सुनिये, आप लोग यह सब क्यों करते हैं, अच्छी तरह जानता हूँ। शक्ति-सत्ता हथियाना चाहते हैं, अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। सच कहूँ तो आप शक्ति संचित कर रहे हैं, इसीलिए आपके प्रति हमारा इतना झुकाव है। मैं योग्यता में विश्वास करता हूँ, आप पर विश्वास करता हूँ।

—शंकर पर?

—दूसरी तरह से विश्वास करता हूँ। उसकी बात भूल जाइये। आप जो कुछ चाहते हैं, वह वह नहीं चाहता। मैं जानता हूँ, आप जो शक्ति चाहते हैं, उसे वह कभी न चाहेगा। इसीलिए उस पर विश्वास करता हूँ। इसके अलावा अभी तक वह गोपालकृष्णन को नहीं भूल पाया है।

दिल पर अप्रत्याशित चोट लगी थी। कमलेश जैन का उस पर विश्वास है, लेकिन श्रद्धा शंकर पर है। पता चला कि देवादिदेव को वह भविष्य का या शायद वर्तमान का भी समर्थ साहित्यिक मानकर छाप रहा है। क्यों? देवादिदेव शंकरदयाल की तरह श्रद्धा क्यों नहीं पायेगा?

—शंकरदयाल इस वक़्त कर क्या रहा है?

—आपको पता होगा।

—क्या कर रहा है?

—नरसिंहम् पिल्लई, शंकर, अमिताभ दवे, सानन्द राय अखबार नहीं निकाल रहे हैं क्या? सानन्द तो कलकत्ते का लड़का है।

शंकरदयाल ! उस समय मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ था। मन की त्वचा कुचले के ज़हर से ज़हरीली हो गयी थी। उस समय कुछ नहीं किया। नहीं, कोई लक्ष्य मन में नहीं आया था। लेकिन बाद में एक बड़ी-सी पार्टी में तमाम लोगों के बीच, शराब का नशा चढ़ते ही मुंह से निकल पड़ा था कि शंकरदयाल खतरनाक दुश्मन सिद्ध होगा, उस पर निगाह रखनी होगी। इस तरह की शब्दावली अंदर-ही-अंदर तैयार हो रही थी। इसीलिए तुरन्त मुंह से निकल पड़ी। देवादिदेव ने कहा था, 'हम-तुम सब विट्रेयर हैं, धोखेबाज़ हैं—गोपालकृष्णन की मृत्यु के बाद हस्ताक्षर नहीं किये थे न, इसीलिए ।' अपने-आप महसूस हो रहा था कि बहुत कुछ ग़लत हुआ जा रहा है, किसी की क्षति हो रही है। पछतावा भी हुआ था। लेकिन रुक नहीं पा रहा था। देवकी बनर्जी हर बात को ध्यान से सुन रहा था। ताता मित्तिर देवादिदेव को रोकने का प्रयत्न कर रहा था।

डेढ़ महीने बाद शंकर का अख़बार बंद कर दिया गया।

उसके बाद देवादिदेव लंबे अँधेरे में चला गया। आज भी उसी में है। शंकर का मित्र उसे नकार कर चला गया। लेकिन लड़के की गरदन किसकी तरह थी ? कौन उसकी तरह सिर झुकाये आहिस्ता-आहिस्ता पैदल चलता था ? याद आया, याद न आया । उसी याद न आने वाले व्यक्ति की याद देवादिदेव के मन के एरियल के पास कटी पतंग की डोर की तरह चक्कर लगा रही थी। एरियल में किसी तरह अटक नहीं रही है।

देवादिदेव कमरे में आया। चौकीदार से खाना बनाने के लिए कहा। बाहर आकर खड़ा हो गया।

चारों ओर बड़ा सन्नाटा था। बहुत दूर तक फैली पर्वतमाला थी, बर्फ़ पर अस्त होता हुआ सूरज चमक रहा था । बड़ी संख्या में पक्षी संध्या समय अपने घोंसलों को लौट रहे थे। ढेरों सीधे तने खड़े ओक, पाइन और फ़र सिर उठाये, विनीत भाव से संध्या को पत्ते-पत्ते में ग्रहण कर रहे थे ।

प्रकृति में सब-कुछ इतना अधिक क्यों होता है ? क्यों इतना अपव्यय है ? संध्या तो रोज़ होती है, रोज होगी। उसको सम्मान और विदा देकर रात को ग्रहण करने के लिए इतना आयोजन क्यों है ?

देवादिदेव नीरवता के आदि नहीं थे। सजा-सजाया कमरा, ढेरों लोग, आवाज़ों और तेज़ रोशनी के अभ्यस्त देवादिदेव की उँगलियों में उत्तेजना से कंपन शुरू हो गया। बहुत बार उसके बारे में बड़ी बातें लिखी-कही गयी, बहुत बार कैमरे के फ्लैश बल्ब से उसका सर्वपरिचित विपण्ण मुख झुलस गया था। उस चेहरे पर एक ही भावाभिव्यक्ति देखी जाती है। सुख में, विपत्ति में, मित्र की मृत्यु पर, प्रेस सम्मेलन में, एयरपोर्ट पर, बाज़ार में, रास्ते पर, खिड़की में, कमेटी की मीटिंग में, प्रदर्शन में, विरोध सभाओं में वह चेहरा एक-जैसा भाव लिये रहता है—परुष, गंभीर, रूखा, विपण्ण। कभी किसी ने उसे हँसते नहीं देखा।

आज नीरव, तरल चाँदी-सी आश्चर्यजनक संध्या में जब वृक्ष धूसरित हरे हो रहे हैं, हिममंडित हिमालय के आगे जैसे उसे गूंगा बना देता है। बेचैनी होती है। साँस फूलने लगती है। साँस फूलती है तो बहुत कष्ट होता है, मानो वायु में ओज़ोन[1] न हो। कथामृत में एक कहानी है. पद्मगंधी हवा में मछुआरिन को नींद नहीं आ रही थी। मछलियों वाली सूत की झोली से पानी छिड़कते ही उसे नींद आ गयी। पहाड़ी देवदार के वृक्षों से धूपगंधी सुगंध झर रही है। बतास धूप की गंध से भरी है। फिर भी नींद नहीं है, नींद आ नहीं रही है। काँच की खिड़कियों के उस पार तारे टिमटिमा रहे हैं। नींद क्यों नहीं आ रही है? हवा में ओज़ोन क्यों नहीं है? निर्जन में आकर अपने को खोजने की बात एक धोखे-सी है। झाँसा है। हरेक की अपनी पसंद है। वैसे आज तक देवादिदेव कभी एक घंटे के लिए भी अकेला नहीं रहा था। सभा-समिति, सेमिनार, डिनर, लंच, कॉकटेल, अड्डेबाज़ी, वीक-एंड पार्टी, घर पर जमघट। बरसों से देवादिदेव ने अपनी पत्नी और बेटे के साथ खाना नहीं खाया। ईप्सिता लड़कों के साथ खा लेती। उसे दोष भी नहीं दिया जा सकता। देवादिदेव अकसर घर पर खाना नहीं

1. एक गैस जो वातावरण में रहती है।

खाता। निमंत्रित रहता। ईप्सिता उन निमंत्रणों में न जाती। श्रीयुत और श्रीमती वसु के सम्मिलित निमंत्रण में श्रीमती वसु नहीं आयेंगी, यह जैसे सब मान बैठे थे।

साँस लेने में बड़ी तकलीफ़ हो रही थी। हवा बहुत थी और शुद्ध थी। क्लब के बंद कमरे की धुएँ और शराब की गंध से भरी हवा में इससे कहीं अधिक ओज़ोन रहता है। बहुत अधिक चैन मिलता, अगर देवादिदेव चमड़े से मढ़ी कुर्सी पर बैठा होता, तारीफ़ करने वाले सामने बैठे होते।

किन्तु, आकाश के नीचे अपना सामना करने के लिए न बैठे रह सकने पर देवादिदेव अपने घर क्योंकर वापस जायेगा? घर लौटने के लिए एकांत ज़रूरी है। कभी घर लौटने का अर्थ भलमनसी से घर लौटना था। गोपालकृष्णन के सम्बन्ध में उसे जो मालूम था, उसे दबाकर जीवनी में और बातें लिखने से घर लौटना सम्पूर्ण नहीं होता। शंकरदयाल को मीसा में बंद कराके, छिपाकर, उसके कष्ट पाने से दुखी होकर, उसकी किताब ख़रीदने से घर लौटना पूरा नहीं होता।

घर लौटने के मानें, विवेक के दर्पण में अपनी नंगी शक्ल देखकर आँखें बंद किये रहना। घर लौटने के मतलब, ईप्सिता की भाषा में सारा 'फ़साद' एक तरफ़ रखकर पहले की तरह भला और संघर्षशील लेखक बनना। घर लौटने के मतलब, पास और दूर के लोगों की आँखों में विश्वासपात्र बनना। वापसी आज बहुत मुश्किल है। वापसी का मार्ग अब बहुत जटिल और काँटों से भरा हो गया है। वापसी की राह में तमाम काँटे तो देवादिदेव के खुद के ही बोये हुए हैं।

न-न, ईप्सिता समझती रहे, देवादिदेव को स्वयं नहीं मालूम कि काँटे बो-बो कर उसने वापसी का मार्ग स्वयं ही कठिन बना दिया है। उसे पता नहीं था कि वह असत् आचरण कर रहा है। जानता न था कि अविवेक के काम से वापसी की राह में काँटे उग आते हैं। असिपत्रों के वन का नरक[1] बन जाता है। पापियों की आत्मा उस नरक का मार्ग पकड़कर आगे बढ़ती

---

1. असिपत्र नरक में मार्ग में दोनों ओर तलवार की धार की तरह पत्ते रहते हैं जो ज़रा-सा भी हिलने डुलने पर पथिक को घायल कर देते हैं।

रहती है। दोनों ओर असिधारा के पत्ते पापियों के इधर-उधर हटने पर उन्हें लहूलुहान करते रहते हैं।

देवादिदेव को इतनी बातें नहीं मालूम थीं। उसने सोचा था कि घर छोड़कर बाहर आने में कोई डर नहीं है। किसी के स्नेह की पुकार पर सदा घर लौटा जा सकता है। छुटपन में देवादिदेव बहुत भला था। माँ के बुलाते ही घर लौट आता। बचपन में पद्मा नदी के किनारे एक छोटे शहर में उनका घर था। उनके घर के सामने था तपता हुआ मैदान। मैदान के बीच में पतली पगडंडी ऐसी थी, मानो उनकी माँ के घने बालों के बीच की माँग हो। सध्या के समय माँ दहलीज पर खड़े होकर पुकारती, 'देबू, घर आ।'

देवादिदेव घर लौटना चाहता था। वह क्या समझता नहीं था कि दिन-ब-दिन वह किस तरह अरण्यदेव बनता जा रहा है? अवास्तविक? पहले जीवन कितना सरल था! तब देवादिदेव भी औरों की तरह विश्वास करता था कि क्रान्ति आ गयी है। समाजवाद आ गया है। सब कम्यून में रहेंगे, जीवन समान होगा। हर ज़िले में कम्यून बन गये थे। रंगपुर तब सुर्ख रंगपुर था। सुविनय ने बहुत सुन्दर गीत गाया था। रेखा सुन्दर गाती थी। वह सुविनय की बहन थी। सुविनय सड़क-दुर्घटना में मारा गया था। जिनके साथ देवादिदेव ने मार्ग पर चलना शुरू किया था, वे सब मर चुके थे। 'साथी! साथी! कंधे से कंधा मिलाओ' गीत किसका लिखा हुआ था? वरुण का। किन्तु वरुण नहीं मरा। वह अब भी लिख रहा है, लिखे जा रहा है। हँसने पर वरुण की दोनों आँखें हमेशा सिकुड़ जाती थीं। लगता कि कोई बहुत छोटा लड़का हँस रहा हो। और भी बहुत लोग थे। जुलूसों में देखे चेहरों की कतार-की-कतार, पहचानी-पहचानी शक्लें। वरुण ने उस दिन उसे देखकर कैसा अपरिचित-सा बरताव किया। करते हैं, सभी करते हैं। इसीलिए तो देवादिदेव जान-पहचान के लोगों के पास जाते हुए डरता है। नये लोगों के साथ रहना उसे बहुत अच्छा लगता है। एक बार घर लौट सकने पर देवादि-देव फिर वरुण के पास जा सकेगा।

लेकिन घर लौटना क्या इतना आसान है? अगर सभी-कुछ दूसरी

तरह से होता ? दूसरी तरह से वापसी ? अमरीका के नीग्रो जिस तरह अपने घर की तलाश करते-करते अफ्रीका पहुँचे ? वैसा होने पर काम बहुत आसान हो जाता। वह मुश्किल काम भी बहुत सीधा है। देवादिदेव घर लौटना चाहता है, उस घर में, जिसे वह स्वेच्छा से छोड़ आया है।

वहुत सच बात है। यह वापसी का सिद्धांत भी उसने स्वयं नहीं अपनाया। मामला दूसरी तरह से हो गया। दस वरस पहले उसे विपुल मित्र ने बुलवा भेजा। वे पश्चिमी बंगाल के कर्ता-धर्ता-विधाता हैं।

विपुल मित्र ने उससे कहा था, 'क्या सोच रहे हो ?'

—सोचूंगा क्या ?

विपुलकाय विपुल मित्र वोले, 'वहुत दिनों तक तो लेफ्ट-राइट की परेड की, अव राइटट-राइट कर रहे हो, करो। लेकिन थोड़ा-बहुत सीरियस काम करो। नौसिखियों का जमाना नहीं है।'

दोनों के बीच में एक मेज थी। मेज पर बहुत-से काग़ज़-पत्तर और फ़ाइलें और दो गिलास थे—स्कॉच के। विपुल थोड़ी-बहुत पीने वाला था। देवादिदेव उन दिनों उससे कहीं ज्यादा शराव पी सकता था, लेकिन पीकर कभी वहका नहीं। नशा न चढ़ने की उसकी बात की व्याख्या पाञ्चजन्य इस तरह करता : 'जो आदमी नशा चढ़ जाने के डर से विटामिन 'बी' या मक्खन खाकर शराव पिये, वह आदमी बहुत ही कच्चा है। निश्चय ही उसके मन में छिपाने योग्य बहुत-सी चीजें हैं। कुछ कह न दे, इसी डर से वह नशे में धुत् होने का ख़तरा नहीं उठाता। शराव क्यों पीते हो ? नशा हो, इसलिए न ? उस तरह की डिसिप्लिन के आदमी तो हो नहीं कि उँगली से नाप कर रोज एक ही वक़्त शराव पीते हो। पीते हो खूब। अकसर दूसरे के पैसों पर। पीकर भी धूर्त और सावधान बने रहते हो। अर्थात् शरावी होने का साहस तुम में नहीं है। हमारा 'धन ऐंड ओनली पुरोहित' का-सा भयानक शरावी वह वनेगा ? देवादिदेव वनु ? अपने को नंगे शिशु की तरह दुनिया के आगे खोलकर रखेगा ? उसमें वह हिम्मत है ? पुरोहित नाम पाते ही व्यक्ति धार्मिक वन जाता है, उपदेश देता रहता है।'

विपुल उसे जी-भरकर शराब पिलाता और अपनी योजनाएँ उसके सामने पेश करता। पहला काम है, विरोधी कैंप में घुसपैठ। 'सब जगह घुस पड़ो। तुम्हारी पार्टी का अजेय किला है, कल्चरल फंट—सांस्कृतिक मोर्चा। देवादिदेव, तुम कल्चरल फंट पर सी०-इन-सी०[1] बन जाओ। सर्वाध्यक्ष। तुमको अभी पचास कमेटियों का अध्यक्ष बनाये देता हूँ।'

—अचानक?

—इन सब बातों को लेकर विवाद से कोई फ़ायदा है? उन्हें पता है कि प्रस्ताव अचानक नहीं आया है। मुझे मालूम है, मैं जानता हूँ कि तुम हमेशा शक्ति और अधिकार चाहते रहे हो। मैं तुमको शक्ति दे रहा हूँ, देवादिदेव!

—मुझे, क्यों?

—वह तुमको भी मालूम है।

—हाँ।

तब देवादिदेव चुपचाप अमोघ और सर्वशक्तिमान बनकर पश्चिम बंगाल के शासकों के दल में शामिल हो गया। पाठ्य पुस्तक चुनाव कमेटी से लेकर सभी तरह की कमेटियों का सदस्य बन गया—अत्यंत प्रतापशाली सदस्य।

ईप्सिता ने कहा था, 'यह क्या कर रहे हो?'

—क्यों? अभी तो यह शुरुआत है।

—बिगिनिंग ऑफ द एंड—ख़ात्मे की शुरुआत।

—नहीं, दूसरा पक्ष विवश होकर समझ गया है कि पश्चिमी बंगाल में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में वामपंथियों को अलग रखने से काम न चलेगा। मुझे स्वीकृति देने का मतलब, वामपंथियों को स्वीकृति देना।

—तुम क्या अपने को वामपंथी समझते हो?

इस बात पर देवादिदेव बहुत नाराज़ हुआ। बहुत दिनों तक उसने ईप्सिता से अच्छी तरह से बात न की। देवादिदेव ने कहा था, 'मैं मानित

1. कमांडर-इन-चीफ़ - प्रधान सेनापति।

तरह से होता ? दूसरी तरह से वापसी ? अमरीका के नीग्रो जिस तरह अपने घर की तलाश करते-करते अफ्रीका पहुँचे ? वैसा होने पर काम बहुत आसान हो जाता। वह मुश्किल काम भी बहुत सीधा है। देवादिदेव घर लौटना चाहता है, उस घर में, जिसे वह स्वेच्छा से छोड़ आया है।

बहुत सच बात है। यह वापसी का सिद्धांत भी उसने स्वयं नहीं अपनाया। मामला दूसरी तरह से हो गया। दस बरस पहले उसे विपुल मित्र ने बुलवा भेजा। वे पश्चिमी बंगाल के कर्ता-धर्ता-विधाता हैं।

विपुल मित्र ने उससे कहा था, 'क्या सोच रहे हो ?'

—सोचूँगा क्या ?

विपुलकाय विपुल मित्र बोले, 'बहुत दिनों तक तो लेफ़्ट-राइट की परेड की, अब राइटट-राइट कर रहे हो, करो। लेकिन थोड़ा-बहुत सीरियस काम करो। नौसिखियों का जमाना नहीं है।'

दोनों के बीच में एक मेज थी। मेज पर बहुत-से काग़ज़-पत्तर और फ़ाइलें और दो गिलास थे—स्कॉच के। विपुल थोड़ी-बहुत पीने वाला था। देवादिदेव उन दिनों उससे कहीं ज्यादा शराब पी सकता था, लेकिन पीकर कभी बहका नहीं। नशा न चढ़ने की उसकी बात की व्याख्या पाञ्चजन्य इस तरह करता : 'जो आदमी नशा चढ़ जाने के डर से विटामिन 'बी' या मक्खन खाकर शराब पिये, वह आदमी बहुत ही कच्चा है। निश्चय ही उसके मन में छिपाने योग्य बहुत-सी चीजें हैं। कुछ कह न दे, इसी डर से वह नशे में धुत् होने का ख़तरा नहीं उठाता। शराब क्यों पीते हो ? नशा हो, इसलिए न ? उस तरह की डिसिप्लिन के आदमी तो हो नहीं कि उँगली से नाप कर रोज एक ही वक़्त शराब पीते हो। पीते हो ख़ूब। अकसर दूसरे के पैसों पर। पीकर भी धूर्त और सावधान बने रहते हो। अर्थात् शराबी होने का साहस तुम में नहीं है। हमारा 'वन ऐंड ओनली पुरोहित' का-सा भयानक शराबी वह बनेगा ? देवादिदेव वसु ? अपने को नंगे शिशु की तरह दुनिया के आगे खोलकर रखेगा ? उसमें वह हिम्मत है ? पुरोहित नाम पाते ही व्यक्ति धार्मिक बन जाता है, उपदेश देता रहता है।'

विपुल उसे जी-भरकर शराब पिलाता और अपनी योजनाएँ उसके सामने पेश करता। पहला काम है, विरोधी कैंप में घुसपैठ। 'सब जगह घुस पड़ो। तुम्हारी पार्टी का अजेय किला है, कल्चरल फ्रंट—सांस्कृतिक मोर्चा। देवादिदेव, तुम कल्चरल फ्रंट पर सी०-इन-सी०[1] बन जाओ। सर्वाध्यक्ष। तुमको अभी पचास कमेटियों का अध्यक्ष बनाये देता हूँ।'

—अचानक?

—इन सब बातों को लेकर विवाद से कोई फायदा है? उन्हें पता है *कि प्रस्ताव अचानक नहीं आया है। मुझे मालूम है, मैं जानता हूँ कि तुम* हमेशा शक्ति और अधिकार चाहते रहे हो। मैं तुमको शक्ति दे रहा हूँ, देवादिदेव!

—मुझे, क्यों?

—वह तुमको भी मालूम है।

—हाँ।

तब देवादिदेव चुपचाप अमोघ और सर्वशक्तिमान बनकर पश्चिम बंगाल के शासकों के दल में शामिल हो गया। पाठ्य पुस्तक चुनाव कमेटी से लेकर सभी तरह की कमेटियों का सदस्य बन गया—अत्यंत प्रतापशाली सदस्य।

ईप्सिता ने कहा था, 'यह क्या कर रहे हो?'

—क्यों? अभी तो यह शुरुआत है।

—बिगिनिंग ऑफ द एंड—खात्मे की शुरुआत।

—नहीं, दूसरा पक्ष विवश होकर समझ गया है कि पश्चिमी बंगाल में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में वामपंथियों को अलग रखने से काम न चलेगा। मुझे स्वीकृति देने का मतलब, वामपंथियों को स्वीकृति देना।

—तुम क्या अपने को वामपंथी समझते हो?

इस बात पर देवादिदेव बहुत नाराज़ हुआ। बहुत दिनों तक उसने ईप्सिता से अच्छी तरह से बात न की। देवादिदेव ने कहा था, 'मैं साबित

1. कमांडर-इन-चीफ : प्रधान सेनापति।

कर दूंगा, यह बिगिनिंग ऑफ़ द बिगिनिंग—आरंभ का प्रारंभ—है।'

ईप्सिता ने कहा, 'अब तुम लौट न सकोगे।'

—जीवन दो पैसों का सस्ता रोमांस नहीं है, ईप्सिता!

वही देवादिदेव आज घर लौटना चाहता है। लेकिन घर लौटना क्या इतना आसान है? विपुल मित्र से अलिखित शर्त पर अदृश्य स्याही से दस्तख़त कराने के बाद?

उस दौरान कैसा वातावरण तैयार हुआ था! भारत-चीन सीमा-संघर्ष के बाद ही बुद्धिजीवियों को जाल में फांसने का प्रोग्राम शुरू हुआ। 'मुक्त साहित्य संस्था' का नाम कई बार सुर्ख़ियों में छपा था। चीन के आक्रमण की निन्दा करना ही काफ़ी न था, उसके साथ ही अपना स्वदेश-प्रेम भी घोषित करना होगा, कम्युनिस्ट-विरोधी शिविर में सम्मिलित होना पड़ेगा।

सभी महत्वपूर्ण साहित्यिक इसी आशय का अपना वक्तव्य देने की दौड़ में सम्मिलित हुए। ग़ैर-राजनैतिक या दक्षिण-पंथी या शुद्ध कला के हिमायती ही नहीं, कभी जो वामपंथी आंदोलन में शामिल थे वे भी नाम लिखाने की दौड़ में थे और उनके नाम भी ख़ूब दिखायी दिये थे। बुजुर्गों में भृगु सान्याल और युवकों में अमृत दत्त तक, दक्षिणतम शिविर में ऐसे शामिल हुए कि फिर जमीन पर न उतरे। भृगु-दा मर गये, अमृत आज भी टिका हुआ है। देवादिदेव की तरह ही वह भी अकेला है।

देवादिदेव को स्वीकृति देने के तमाशे में नहीं बुलाया गया। उसे क्षमता का टोप पहना दिया गया और साथ ही उसने चरम दक्षिणपंथी शिविर के बहुप्रचारित समाचार-पत्र में नियमित रूप से लिखना शुरू किया। चरम दक्षिणपंथी शिविर में सम्मिलित होकर उन दिनों बहुत बदमाशी से काम करना पड़ता था। जैसे क्रांतिकारियों के साथ लेक पर और मैदान में बाउल[1] नाच एवं सांस्कृतिक मेलों के मंच पर बैठना। देवादिदेव ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति था, जो यह सब कर सकता था और फिर अपने दल में 'चिरकाल से प्रतिबद्ध लेखक' के रूप में प्रशंसित भी

---

1. हिन्दू गायकों के गान।

हुआ जा सकता था। उसके मुकाबले अमृत दत्त ने कम बुरे काम करके बहुत बदनामी कमायी।

उसके बाद, उसके बाद...।

घर लौट आने का सिद्धांत उसका अपना नहीं था। इस बीच एक के बाद एक कई घटनाएँ घटीं। इस अध्याय की शुरुआत सन् सत्तर से हुई थी। चरम दक्षिणपंथी शिविर में और किसी तरह का पतन नहीं हो रहा था। कुछ छिटपुट घटनाएँ अवश्य हुई थीं।

एक पत्रिका की दसवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में ग्रेट ईस्टर्न में एक विशाल आयोजन हुआ। उसका निमंत्रण-पत्र मिला अनुष्ठान के दूसरे दिन। उसने सुना था, अनुष्ठान में उसे प्रमुख सम्मानित अतिथि बनाया जायेगा। वह सम्मान मिल गया अमृत दत्त को।

परिणाम यह हुआ कि उसने अपने सिद्धांत के अनुसार पत्रिका के कर्णधारों की इच्छा की उपेक्षा कर उस वर्ष का पुरस्कार सती गुह राय को दिला दिया। फलस्वरूप उसके इस बदला लेने की बात पर उक्त पत्रिका में बहुत-सी चिट्ठियाँ प्रकाशित हुईं।

वृद्ध साहित्यकार तारक गांगुली की मृत्यु पर जो सभा हुई, उसमें उसे बुलाया ही न गया, हालांकि उस सभा के कार्यकर्ता उसके अपने खेमे के लोग थे। उससे कह दिया गया कि पता ही नहीं था कि तुम यहाँ हो या मनीला में।

फुल्लरा मित्र उसकी प्रिय पाठिका और सडे क्लब की सभानेत्री थी। फुल्लरा के घर हर रविवार को बहुत जोरदार और ह्विस्की से युक्त साहित्यिक दिवस का आयोजन होता था। फुल्लरा का बेटा उग्र राजनीति में सम्मिलित होकर गायब हो गया था। फुल्लरा उससे कुछ कहे बिना विपुल मित्र के पास चली गयी। यह खबर अभागे बदजात पाञ्चजन्य ने उसे बतायी थी। उसने फुल्लरा से उसे न बताने का कारण जानना चाहा। फुल्लरा ने अपने पति का नाम लेकर कहा, 'मानी ने कहा है कि तुम विपुल की नजरों में गिर गये हो।'

विपुल ने उससे कहा था, 'तुमने मेरी बहुत बदनामी की है जी! कलकत्ता में आजकल बहुत खून-खराबा हो रहा है होशियार रहना।

मेरी मिनिस्ट्री नहीं है कि मेरे कहने पर सब-कुछ हो जायेगा।'

—क्यों ? मैं होशियार क्यों रहूँ ?

—कह दिया, बस मान लो।

सत्तर में कलकत्ता में और उसके आसपास बड़ा खून-खराबा हुआ था। खुलेआम मुठभेड़ों जैसी बातें हुईं। यद्यपि देवादिदेव कलकत्ता के एक निरापद अंचल में रहता था, फिर भी युवकों के इस मृत्यु-उत्सव से उसे विशेष आघात लगा और वह अनुपम चकलादार के पास भागा।

—अनुपम, क्या लाइन है ?

—कैसी लाइन ?

—पार्टी-लाइन।

—किस बारे में ?

—यही नक्सलवादी लड़कों की हत्या ? मंत्रिमंडल में तो हमारी पार्टी भी शामिल है। कोई वक्तव्य क्यों नहीं दिया जा रहा है ?

—किसने कहा, वक्तव्य नहीं दिया गया है ? पढ़कर देखो।

अखबार की कतरन। सन् '70. 10वीं जनवरी। देवादिदेव पढ़ता है। उसकी पार्टी की आन्ध्र प्रदेश कौंसिल की सब-कमेटी ने श्रीकाकुलम में पुलिस के अत्याचारों की जांच की है। कमेटी ने संबंधित इलाक़े का दौरा किया है और रिपोर्ट दी है कि नक्सलवादी आंदोलन को बड़ा आघात लगा है और अब आंदोलन स्पष्टतः समाप्त हो रहा है।

"कई बड़े-बड़े नक्सलवादी नेता पुलिस की गोली से मारे गये हैं या क़ैद कर लिये गये हैं। पिछले दो महीनों से नक्सलवादियों की गतिविधियां बंद हैं क्योंकि हथियारबंद पुलिस बड़ी संख्या में तैनात है और पुलिस द्वारा उस क्षेत्र के चप्पे-चप्पे की खुफ़िया जांच जारी है। इससे पहले नक्सलवादियों को जनता से जो सहयोग और समर्थन मिला था, वह अब मौजूद नहीं है।"

कमेटी ने नक्सलवादी नेताओं से अनुरोध किया कि वे संघर्ष का अपना मौजूदा तरीक़ा छोड़ दें। उनकी संघर्ष-पद्धति जमींदारों, महाजनों और सरकार की सहायक सिद्ध हो रही है। साथ ही, यह प्रजातांत्रिक आंदोलनों का दमन करके जनता को बहुत कष्ट में डाल रही है।

कमेटी ने सरकार से तथाकथित उपद्रवग्रस्त अंचल में पुलिस का तांडव फ़ौरन बन्द करने को कहा। यह भी माँग की गयी कि सभी घटनाओं की विभागीय न्यायिक जाँच करायी जाये, आदिवासियों की जमीन पर कब्जा करने वाले मैदान के सभी लोगों को वहाँ से निकाला जाये और जोतने योग्य भारी बंजर भूमि का वितरण किया जाये।

देवादिदेव का कहना था कि 'आध्र में निश्चय ही अच्छा काम हुआ है, लेकिन इस विषय में हमारा वक्तव्य क्यों नहीं जारी किया गया है ?'

—अभी नहीं जारी किया गया है, किया जायेगा।

—क्या यह निश्चित किया जा चुका है ?

—तुम तो बड़े आदमी हो, नहीं तो तुम ही कुछ विरोध-उरोध की व्यवस्था करो।

—मैं ?

—क्यों नहीं ?

देवादिदेव चुप रहा। विपुल के साथ उसका एक गुप्त समझौता था कि वह कभी मंच पर उसके साथ नहीं रहेगा। उसके अलावा कलकत्ता या पश्चिमी बंगाल में नक्सलवादियों के प्रति वर्तमान मंत्रिमंडल का रुख या नीति क्या है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी यह जानना था कि श्रीमती भारत इस विषय में क्या सोचती हैं ? उनकी नीति नक्सलवादियों को निष्ठुरता से कुचल देने की है। यही विपुल की भी नीति है। आज मंत्रि-मंडल में विपुल शीर्षस्थान पर नहीं है, लेकिन यह कोई चिन्ता की बात नहीं है। राजनीति के खेल में पासा उलटा पड़ते ही विपुल दिल्ली छोड़कर कलकत्ता आ जायेगा, आ रहा है। नहीं, देवादिदेव अपने को मुसीबत में नहीं डाल सकता।

अनुपम ने कहा था, 'वियतनाम के बारे में क्या सोचते हो ? अमरीकी साम्राज्यवाद वियतनाम में जो कर रहा है, उससे।'

—कलकत्ता के लड़कों की बात कौन सोचेगा ?

देवादिदेव अपनी बात आतंरिक दुख से कहता। सच कहने में क्या हर्ज है ? पश्चिमी बंगाल और कलकत्ता के युवकों की हत्या अब दूर की बात नहीं रह गयी थी, निकट आ गयी थी। जिन-जिन युवकों को देवादि-

देव पहचानता या नहीं पहचानता था, उनके लिए भी वह डरने लगा था। युवक बड़े नासमझ हैं। पता नहीं कि जान-पहचान का कौन-कौन लड़का मारा गया है! पता लगने पर देवादिदेव भी कैसी मुसीबत में फँस जायेगा? उस समय उसे परेशानी होगी। परेशान होना देवादिदेव के लिए ठीक न था। ऐसे में वह बहुत-से मुखौटे पहनकर बहुतेरे काम एकसाथ नहीं चला सकता। ठीक उसी तरह, जैसे नशे में होने की बात उसे ठीक न लगती थी। इसीलिए तो मक्खन या विटामिन-बी खाकर वह शराब पीता। खूब शराब पीने के बाद भी नशे में न आकर सबको ताज्जुब में डाल देता।

'वियतनाम की बात सोची जायेगी' कहकर देवादिदेव उठ आया था। उस दिन वह थोड़ा जल्दी घर लौटा। इस तरह जल्दी लौटना बड़े आश्चर्य की बात थी। घर, लौटकर देखा कि लड़के को खाना देकर ईप्सिता बाहर जा रही है। ईप्सिता संध्या के बाद कभी घर से बाहर नहीं निकलती थी।

—बात क्या है?

—जा रही हूँ।

—कहाँ?

—अशनि राय के पास।

—क्यों? डी॰ आई॰ जी॰ के पास क्यों जा रही हो?

—नकुड़बाबू के बेटे को मार डाला गया है।

—नकुड़बाबू?

—पर्ल फ़ार्मेसी के कंपाउंडर, जिसने तुम्हें विटामिन—बी न्यूरॉन के इंजेक्शन दिये थे।

—उसके बेटे को मार डाला? किसने?

—मारा तो कल ही था। सवेरे के अख़बार में भी था।

—वह तो किसी कॉलोनी की घटना थी। पांच लोगों को...।

—नकुड़बाबू उसी कॉलोनी में रहते हैं। उन पांच लोगों में बलाई भी था। उसे मैंने घर क्यों जाने दिया!

—'जाने दिया' माने?

—यही सुमन के साथ था।

—मेरे घर पर ? और मुझे पता भी नहीं।

—तुम्हें बताना मुमकिन नहीं था।

—क्यों ?

—तुम्हें पता लगने पर वह यहाँ नहीं रुकता।

—क्यों ?

—तुम पर बलाई विश्वास नहीं करता। कई दिन से फार्मेसी में ही सो रहा था। बुखार हो गया था इसलिए यहाँ ।

—तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ?

—बलाई की लाश माँगूगी।

—तुम्हारे कहने से पुलिस मान जायेगी ?

—देखती हूँ। अशनि राय मेरी फुफेरी बहन के पति हैं।

—मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।

—नहीं।

ईप्सिता ने सर हिलाया, 'तुम नहीं चलोगे।'

उस रात ईप्सिता लौटी ही नहीं। दूसरे दिन बहुत देर से लौटी। चेहरा एकदम सफेद और घबराया हुआ था। देवादिदेव गुस्से और डर से फटा पड़ रहा था। ईप्सिता बिलकुल अजनबी आवाज में बोली, 'शोर न मचाना। पुलिस ने बहुत को आपरेट किया है। तुम्हारे मकान की कोई पड़ताल नहीं होगी। दाह कर आयी हूँ।'

सारी जानकारी बहुत तीखी थी। ईप्सिता ने कहा, "नकुड़बाबू ने तीन महीने पहले तुमसे कहा था कि बलाई को बाहर भेजना चाहता हूँ, थोड़ी मदद कर दीजिये ?"

—कहने से क्या होना है ? जो लड़का बाप की तकलीफ न समझे, थैंक्स टु सेन्सलेस वायलेन्स...!

—नकुड़बाबू को विश्वास है कि तुम मदद करते तो यह सब-कुछ न होता।

—नकुड़बाबू का विश्वास है ! नकुड़बाबू कौन हैं ?

—बलाई के पिता।

देवादिदेव को लग रहा था कि वे ईप्सिता से हारते जा रहे हैं। ऐसा महसूस होने पर उनका गुस्सा बढ़ गया है। अचानक घर में मुसीबत लाने के कारण उनके मन में समस्त नक्सलवादी आंदोलन के लिए घृणा हो गयी। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि अब से वह नक्सलवादियों के बारे में ज़रा भी परेशान न होंगे। दूसरे बड़े उद्देश्यों के लिए काम करेंगे और उन्हीं पर ध्यान देंगे।

शाम को नहा-धोकर टेलीफ़ोन उठाते ही कलकत्ता का बाज़ारू साहित्य-समाज भी वही सोचेगा, जैसा वह सोच रहे हैं। युवकों की लाशें इस समय उनके दरवाज़े पर पड़ी हैं। इसलिए महान और महानतर घटनाओं में उलझना ज़रूरी है। अमरीकी सूचना विभाग को वियतनाम के बारे में सभी की सम्मतियाँ पेश कर दी गयीं। बड़ी धूमधाम से उक्त कार्य सम्पन्न हुआ।

जीवन अकसर बहुत अप्रत्याशित मोड़ लेता है। उस दौरान एक के बाद एक बहुत-सी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। देवादिदेव का पार्टी का पुराना दोस्त बाबू जीवन उसके पास आया और उसने देवादिदेव पर हमला बोल दिया, "मेरा बेटा बादल पुलिस की गोली से घायल होकर अस्पताल में पड़ा हुआ है। तुम अभी चलो, नहीं तो वे लोग उस पर ध्यान न देंगे।"

—बादल भी नक्सल है?

—बिलकुल। नहीं तो मेरी यह हालत कैसे होती?

—तुम्हारा बेटा होकर वह नक्सल हो गया?

—मेरा भाग्य तुम्हारे जैसा तो है नहीं। भाभी लड़कों की गार्जियन बनी हुई हैं। इसलिए तुमको कोई फ़िक्र नहीं। मेरी घरवाली तो वीरांगना है। सब-कुछ जानते हुए भी कुछ न बोलीं।

—तुम क्या करते रहे?

—मेरा वह बेटा राजनैतिक विचारधारा लेकर...छोड़ो उसे, चलो, चलोगे न? मैं तो किसी को जानता नहीं, पहचानता नहीं। तुम्हारा नाम याद आया।

—मैं जाकर क्या करूँगा, जीवन?

—नहीं चलोगे?

—बताओ तो, जाकर करूँगा क्या ?

—यों यहाँ चलोगे ? सड़क पर जाकर वियतनाम-विरोधी जुलूस निकालोगे। उसमें अखबार में तसवीर निकलेगी। जीवन सामन्त तो निकम्मी पार्टी का साथी है। तुम एकदम जानवर हो गये हो, समझे ?

—चलो, चलता हूँ।

इस वक़्त जीवन ने बहुत लड़कपन किया। उसने रोकर आँसू पोंछते हुए कहा, "जाने दो भाई, दया नहीं चाहता।"

—लो यह देखो, आँखें पोंछो।

—रहने दो, भाई !

देवादिदेव लाचार होकर गया। नक्सलवादियों का मामला धीरे-धीरे उलझता जा रहा था। हर एक सुखी और शान्त दहलीज पर खून से लथ-पथ छाया थी। यह सभी कुछ मध्यवर्ग के लोगों को नैतिक पीड़ा देने के लिए काफ़ी था। अस्पताल में बादल बहुत ही रूखी गंभीरता से होंठ बंद किये हुए पड़ा था। देवादिदेव ने कहा, 'जीवन, यहाँ परेशान होने से कोई फायदा नहीं। आओ देखते हैं।'

—क्या देखोगे ?

—किस तरह से बादल को जिन्दा रखा जाये ?

—क्या करोगे ?

—देखते हैं। जेल ही में रखें तो जिन्दा तो रहेगा।

—वह तो मुचलका भी न भरेगा और छूटेगा भी नहीं।

—देखेंगे।

अजीब बात है। बादल के मामले में देवादिदेव ने अपनी आत्मा को पाप-मुक्त करने का प्रयत्न किया। सभी संबंधित स्थानों पर भाग-दौड़ की। अगर बादल सामन्त सहयोग दे तो उसे कलकत्ता के बाहर हटाकर कई बरस तक जीवित रखा जा सकता है। यह व्यवस्था कर दी गयी। यह बात बताने के लिए वह जीवन के घर गया। जीवन की वीरांगना पत्नी बेटे को जीवित वापस पा सकने की बात जानकर कृतज्ञता से रोने लगी। और साथ ही रुँधी आवाज में बोली, 'क्या वह मान लेगा ?'

—उसे मनाइये आप। यह राजनीति गलत राजनीति है, भाभी !

राजनीति से कुछ भी नहीं होगा। हमारे बीच के अच्छे-अच्छे लड़के मारे जा रहे हैं। और तो कुछ हो नहीं रहा है।

—स्कॉलरशिप मिली थी।

—देखिये, जरूर मान जायेगा।

—बाहर...उसके मामा कानपुर में रहते हैं।

—हाँ, हाँ। और...।

—न, रुपये मत दीजिये।

देवादिदेव ने जीवन की पत्नी को, ग़रीब आदमी के ऋणी न होने के अहंकार को चोट नही पहुँचायी। बादल का काम करने की प्रसन्नता से उसका मन पंख खोले था और देवादिदेव संडे क्लब की ओर चल पड़ा। वहाँ देवकी बनर्जी ने व्हिस्की पीते-पीते देवादिदेव का धन्यवाद ग्रहण किया और बोले, 'लगता नहीं कि लड़का बात सुनेगा। लड़के बहुत समर्पित हैं। लगता है, सुनेगा नहीं।'

—सुनेगा, सुनेगा।

देवादिदेव कहता जा रहा था और व्हिस्की पी रहा था। केकड़े का गूदा और सुअर के गोश्त के कबाब खा रहा था।

बादल की बात उसे याद नहीं रही। छह दिन बाद वह जब कॉलेज स्ट्रीट में था तो जीवन सामन्त के साथ दो और व्यक्ति इसी तरह भाग्य की ठोकर खाये हुए उसके कमरे में आये। पिकासो की तसवीर के नीचे उजबेकिस्तान के रंगीन क़ालीन पर पछाड़ खाकर जीवन सामन्त बोला, 'यह तुमने क्या किया, देवादिदेव? तुम्हारा सुझाव न जान पाता तो बादल बच जाता। तुम्हारी बात कहने पर उसने कहा, सोचूंगा। उसके बाद ही उसने जेल के अस्पताल से भागने की कोशिश की। इसी से पुलिस ने उसे, पुलिस ने...उसे...।'

—क्या किया?

—मार डाला।

जीवन ज़ोर-से रोने लगा और देवादिदेव को बेटे की मौत के लिए बार-बार दोष देने लगा। वह देवादिदेव को कुछ भी कहने का मौक़ा न दे रहा था और इसी तरह रोते-रोते कमरे से निकल गया। सारी घटना ने

देवादिदेव को कटु बना दिया। बादल और उसके पिता के संबंध को लेकर उसने झटपट 'राजू, लौट आ' कहानी लिख मारी, लेकिन कटुता दूर न हुई। बादल की मृत्यु के बारे में सभी बातों का उसने पता लगाया। उसे सब बातें मालूम हैं—यह सोचकर वह बहुत घबरा गया और उसने आगे की खोजबीन बंद कर दी।

बादल की रीढ़ में गोली लगी थी। वह खड़ा भी नहीं हो सकता था। अतएव अस्पताल से भागने की कोशिश उसके लिए असंभव थी।

बादल को सोयी हालत में ही अस्पताल से हटाया गया।

दूसरे दिन जेल के फाटक के पास गोली से बिंधी उसकी मृतदेह मिली थी। घायल आसामी ने भागने की कोशिश की थी, यह था पुलिस का बयान लेकिन पगली घंटी[1] नहीं बजी थी।

बादल के शरीर में हर स्थान पर कई गोलियाँ लगी थीं। कॉलरबोन में, पैरों में गोलियों के छेद थे। मारने का उद्देश्य न होता तो गोलियाँ दूसरी जगह लगी होतीं। उसकी मौत खून बहने से हुई थी।

यह सारी जानकारी देवादिदेव को पूरी तरह परास्त कर गयी। वह अनुपम के पास भागा। अनुपम ने उसे बताया कि आंध्र के नक्सलवादियों पर पुलिस के हमले के बारे में पार्टी बहुत ही सावधानी, सतर्कता बरत रही है। मौका आने पर पश्चिमी बंगाल के बारे में भी यही रुख रहेगा। तभी अनुपम एकाएक कह बैठा कि 'पार्टी क्या करेगी, तुमको इस विषय में बताना संभव नहीं है।' इससे देवादिदेव के अहं को चोट लगी—तो अब अनुपम उस पर विश्वास नहीं करता है!

आहत अहं बहुत समय बाद संतुष्ट हुआ। कई महीने बाद अचानक अमरीकी जंगली जीव संबंधी बहुप्रचारित पत्रिका के भारतीय प्रतिनिधि ने देश-विदेश को खोज निकाला। नक्सली लोग जंगल के जीव न थे, कलकत्ता जंगल न था, फिर भी देवादिदेव के कंधे पर बंदूक रखकर उस प्रतिनिधि ने अचानक नक्सलवादियों के बारे में बहुत जिज्ञासा दिखायी। वह श्वेतांग बहुत ही सरल था। उसने देवादिदेव को समझाया कि नक्सल

---

1. जेल में गड़बड़ी होने पर जो घंटी बजती है।

शिविर से हटकर, दक्षिणपंथी शिविर की क्रांतिकारी लेखनी को भी जगाना चाहिए। देवादिदेव ने इस समाचार को सही स्थान दिया। परिणामस्वरूप दक्षिणतम शिविर में सहसा तीन क़लम विद्रोही बन गयीं। निष्कर्ष पर पहुँचने में उन्हें देर लगी और बहुत दिनों बाद आपात-स्थिति की घोषणा होने पर उन तीनों क़लमों वाले तीन जोड़ी हाथों में हथकड़ियाँ लग गयीं।

इसी तरह देवादिदेव का जीवन आगे बढ़ता रहा। उसके बाद उसे फिर यश दिलाने के लिए मुजीब का युद्ध आरम्भ हुआ। नक्सलवादी आंदोलन चुपचाप चलता रहा, क्योंकि वह पश्चिमी बंगाल में केंद्रित था। लेकिन बांगला देश के विषय में चुप रहने से काम नहीं चलने वाला था, क्योंकि वह सीमा के उस पार की घटना थी। देवादिदेव ने इस मौक़े पर अपने को उक्त दक्षिणपंथी शिविर की नेक नजरों में रखा और सहानुभूति-परक लेखन से बांगलादेश के मुक्ति-योद्धाओं पर पाक सेना के सैनिकों के अत्याचारों के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर लिखा।

परिणामस्वरूप उसका अकल्पनीय अभिनंदन होता रहा। अचानक आश्चर्य हुआ कि एक दिन अनुपम उससे कह बैठा, 'कलकत्ता के आसपास इतनी पैशाचिक हत्याएँ हुईं और उस बारे में तुमने कभी कुछ नहीं लिखा। क्या सारी पैशाचिकता बांगलादेश में ही घटित हुई है?'

देवादिदेव को मानो अचानक किसी ने पीछे से छुरा मार दिया हो।

अनुपम भद्दे ढंग से हँसने लगा और बोला, 'पता है, सबके मर जाने पर ही तुम लिखोगे!'

इसी तरह सब चलता रहा। 1972 के चुनावों में विपुल मित्र के सत्ता में लौटने पर देवादिदेव भी फिर से निश्चिन्त और स्थायी आसन पर आसीन हुआ। 1975 का आपातकाल उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। अत्यन्त निश्चिन्त मन से वह 'श्रावण की संध्या में', 'मन की गंभीरता में अकेला', 'झील में वसन्त' जैसे प्रयोगवादी उपन्यास लिखता रहा। हिंसा की राजनीति ने मनुष्य की मूल अनुभूति को भुला दिया था। प्रेम और प्यार के प्रति विश्वास लौटाने की आवश्यकता थी। देवादिदेव-रचित नर-नारी सत्तर-इकहत्तर के कलकत्ता में स्थापित हुए और प्यार के लिए

वे बड़े वेग से पलामू के जंगलों को, कश्मीर में, हिमालय की तलहटी की ओर निकल पड़े। तीन पुस्तकों का फिल्मीकरण हुआ और 'झील में वसन्त' हिट हुई। सदाबहार प्रेमी जोड़ी ने इस चित्र में फिर एकसाथ काम किया और प्रौढ़ा नायिका और प्रौढ़ नायक द्वारा एक साथ पहलगाँव में गीत गाये गये।

सभी कुछ ठीक-ठाक चलता रहा, अनवरत चलता रहा। किन्तु अचानक देवादिदेव को दिल्ली से एक ज़रूरी सूचना मिली। सूचना इतनी ज़रूरी थी कि वह अपने ही पैसों से हवाई जहाज़ से दिल्ली के लिए रवाना हो गया। उसे बहुत ही बुरा लग रहा था। लग रहा था कि हवाई जहाज़ ठीक से नहीं उड़ रहा है। इंडियन एयर लाइंस की सेवा में उसे अचानक गिरावट दिखायी देने लगी। उसे बेकार में गुस्सा आने लगा।

देवादिदेव को पता नहीं था कि उसे घर लौटने को कहा जायेगा। दिल्ली पहुँचते ही वह मनोज दवे के दफ्तर की ओर भागा। हाँ, उसका खयाल गलत न था। उसका खयाल कभी ग़लत न होता था।

मनोज दवे उसे डाइन बुढ़िया की तरह 'शीऽऽ' कहते हुए एक गुप्त कमरे में तुरन्त ले आया। अचानक परदा हटा और भीतर आयीं श्रीमती कुलकर्णी। उनका चेहरा शिशिर में धुले गुलाब की तरह पवित्र और कोमल था। कंठस्वर कोमल और चेहरा मसृण था। छाती उठी हुई। उन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता था कि उनकी उम्र साठ बरस है। चेहरे की त्वचा और वक्ष विलायती प्लास्टिक अस्त्रोपचार से सजीव थे। कमनीयता को नये सिरे से पाने के लिए वह पुरानी चमड़ी और पुराना वक्ष विदेश में रख आयी थीं। श्रीमती कुलकर्णी का बाहरी परिचय कुछ इस तरह का था। वह सतोषी माँ की मानवीय राजदूत और बहुत-से लोगों की आध्यात्मिक गुरु थीं। वह बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली स्त्री थीं।

देवादिदेव को देखकर वह निद्रालु नेत्रों से हँसीं और दुलार-भरी आवाज़ में मनोज दवे से बोलीं, 'नवपत्र, हेरल्ड और वैलियेंट अखबारों के संपादकों को गिरफ्तार कर लिया गया है?'

—जी।

—केवल के मकान पर छापा मारने का क्या हुआ?

—केवल आज '—' के घर डिनर खा रहे हैं। डिनर समाप्त होने पर रात के अंतिम पहर में रेड होगी।

—यह कौन हैं?

—देवादिदेव वसु।

—इन्हें सब बता दो।

—बता रहा हूं।

—नहीं, मैं ख़ुद बताऊँगी।

—बताइये।

—वासू, सुनो...।

मिसेज कुलकर्णी टूटे-फूटे शब्दों में ढेर-की-ढेर 303 छोड़ती रहीं। 'वासू! पश्चिमी बंगाल की हालत से वह बहुत असंतुष्ट हैं। इमर्जेंसी के बारे में तुम लोगों का समर्थन ही काफ़ी नहीं है। उनका कहना है कि इमर्जेंसी के बारे में पश्चिमी बंगाल के लेखक बहुत दब्बू हैं।'

—दब्बू रहने की बात है। विपुल ने मुझे...।

—विपुल का नाम मत लो। विपुल इस वक़्त उनकी गुड-बुक में नहीं है। हिमालय की नदियों में इलिश मछलियों की खेती के मामले में रुकावट डालने से विपुल अत्यन्त रुष्टता का कारण बन गया है।

—क्या हिमालय की नदियों में इलिश मछली होती हैं?

—रूस ने तो साइबेरिया को घास से पाट दिया है। अच्छी मिसाल सामने है, फिर भी तुम लोग ऐसी बातें क्यों कहते हो? मत्स्य-विज्ञानियों का कहना है कि बर्फ़ के पानी वाली नदियों में हिलसा खूब फलेगी। उसे जाने दो!

—क्या कह रही थीं?

—इमर्जेंसी का आगे बढ़कर अभिनन्दन करना ही काफ़ी नहीं है, वासू! लेखकों से राष्ट्र इमर्जेंसी के विरोधियों के खिलाफ कड़े रुख की आशा करता है। इतनी कोशिश करके तीन कलमची तैयार किये गये, वह भी ऐसे अखबारों के जो प्रतिक्रियावादी हैं।

—हम लोगों का कैम्प किस तरह इमर्जेंसी को गालियां दे?

—क्यों न दे? इमर्जेंसी ने जिस तरह सबको सुखी किया है, तुम

लोग उसे समर्थन दे रहे हो। ये बातें जिस तरह सच हैं, उसी तरह यह भी सच है कि कम-से-कम अपने में से ऐसे दो-चार लोगों को, जिन पर विश्वास किया जाता हो, इमर्जेंसी का विरोध कर जेल भेजना चाहिए था। उससे पश्चिमी बंगाल की इमेज बनती।

—अगर मालूम होता ।

—सच कहूँ, तुममें अधिक तो आंध्र के लोग तेजस्वी हैं। वहाँ लेखक नक्सलवादी बन गये हैं, गोलियों से मर रहे हैं, जेल जा रहे हैं । नो, नो, आंध्र के बारे में उन्हें कोई चिंता नहीं है। आंध्र उनका रेड फोर्ट है। लेकिन लेखकों की इमेज वहाँ बहुत अच्छी है । यह कैसी बात है कि पश्चिमी बंगाल में एक लेखक भी नक्सलवादी नहीं बना, जेल नहीं गया ?

—सच !

—इस स्थिति में मुझे कुछ भी अच्छा नहीं दिखायी दे रहा है । यह बात क्या सच है कि नक्सलवादी लोग मूर्तियों के सिर काट रहे हैं ?

—कुछ-कुछ ।

—गुड, वैरी गुड। इस वक्त कलकत्ता में, भारत के चार सौ सतत्तर साधु-सन्यासियों की मूर्तियाँ स्थापित करना उचित है।

—चार सौ सतत्तर साधु ?

—हाँ, जितनी बार ध्यान करती हूँ, यही एक संदेश मिलता है। छोड़ो, एक अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन करने की बात सोचनी पड़ेगी। उसमें इमर्जेंसी को समर्थन दो । उसीके साथ कलकत्ता में कुछ विरोधी लेखकों की तलाश करो ।

श्रीमती कुलकर्णी अब भुवनमोहिनी मुसकान मुसकरायी। यह विशेष मुसकराहट उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना से जुड़ी थी। हिमालय में एक बर्फ से ढके गड्ढे के पास खड़े होकर वह इसी मुसकराहट के साथ मुसकायी थीं। किसी कैमरे वाले ने फोटो खींच ली। हिमालय सीमान्त की तूफानी यात्रा समाप्त कर, हेलीकॉप्टर में उत्तरकाशी लौटते समय माँ-भगवती ने उनका चेहरा इस मुसकराहट के साथ देखा और तभी वह फौरन उतर कर उनके पैरों पर गिर पड़ी। उसके बाद ही कुलकर्णी पत्नी का दिल्ली आगमन हुआ और धीरे-धीरे अब वह लोगों का भाग्य

बिगाड़ने लगीं। जात्रा-नाटकों में नियति के चरित्र की भाँति ही वह तूफ़ान की तेज़ी से भारत के भाग्याकाश में अदृश्य प्रवेश और प्रस्थान करती रहती हैं। उस समय भी हँसते-हँसते वह परदे की ओट में ओझल हो गयीं।

देवादिदेव ने माथे का पसीना पोंछा। अभी तक विपुल था, देवादिदेव बेफ़िक्र था। अब उसे कौन बचायेगा ?

मनोज दबे बोले, 'तुमसे और काम भी है।'

—क्या ?

मनोज ने एक नाम बताया। देवादिदेव को बिजली छू गयी। बोला, 'क्यों, कुछ जानते हो ?'

—नहीं, मुझे किसी ने कुछ नहीं बताया। फ़ैसला लेने की स्थिति में हम अभी नहीं हैं। हममें से कोई अफ़सर कुछ दिनों से सिर्फ़ चपरासी या ड्राइवर का काम कर रहे हैं। ख़बर पहुँचा देते हैं। किसी को यहाँ से वहाँ ले जाते हैं। ले जाते वक़्त अपनी गाड़ी ख़ुद चलाते हैं। शोफ़र वाली विभागीय गाड़ी नहीं लेते। यही हमारा काम है।

—ऐसा क्यों करते हो ?

—टिके रहने के लिए।

—सचमुच क्या नवल, नौनिहाल और पिल्लई को अरेस्ट किया गया है ?

—ज़रूर।

—ओह !

—क्या हुआ ?

—नवल, पिल्लई !

—उन्होंने आप ही अपने पर मुसीबत बुलायी।

—तुम नवल के...!

—साला हूँ। मेरी पत्नी बहुत ख़फ़ा हो गयी है। चलो।

—इन महिला ने जो भी कहा...।

—सब सच हो सकता है। और सभी कुछ ठीक-ठीक करने के बाद भी अगर ऊपर से विपरीत निर्णय आये तो यह बड़े आराम से कह सकती हैं कि बाबू से जो कहा था वह ध्यानमग्न अवस्था में सपने के निदेश से

कहा था। यह कहकर तुम्हें-मुझे फँसा कर यह हिमालय की ओर प्रस्थान कर सकती है। हम यहाँ बड़े कठिन दिन गुजार रहे हैं, देवादिदेव ! मुझसे कुछ न कहो।

देवादिदेव को मनोज दवे ने एक और स्थान पर पहुँचा दिया और अचानक उससे अलग हो गया। उस रात वह भी मीसा में धर लिया गया। राजधानी का अंधकार और सर्वव्यापी मीसा मिल-जुल कर वातावरण पर हावी थे।

मनोज दवे ने उसे जहाँ पहुँचाया था, वह सन् 1911-12 में बना भवन था। बड़ा-सा बगीचा था। बड़े-बड़े वृक्षों की नीरवता के बीच मकान सोया पड़ा लगता था। जिनके इस भवन में यह दफ्तर खुला था दुनिया में अपना सहारा वह आप और उनकी लगोटी थी। सहज और आडंबररहित जीवन के लिए वह प्रसिद्ध थे। उनसे मिलने के लिए एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते समय कड़ी सुरक्षा-व्यवस्था पार करना पड़ती थी। देवादिदेव को लगा कि शिक्षा-समाचार-संस्कृति जगत के बहुत-से लोगों को मीसा में गायब करा देने के बाद यह भलेमानुस डरे-डरे-से हैं। कोई भी बदमाश बम मारकर उन्हें भी गायब कर सकता है।

एक बड़ा-सा हॉल था। कमरे के दोनों ओर छत के करीब चमकीली ट्यूबें जल रही थीं। रोशनी के नीचे लम्बी मेज थी। मेज पर चमकीली रोशनी थी। अच्छी पोशाकें पहने क़तार-की-क़तार औरतें पत्रिकाएँ उलट रही थीं। भारत की सारी पत्र-पत्रिकाएँ यहाँ आती थीं। कहाँ से कौन-सी आपत्तिजनक रचना प्रकाशित हो रही है, इस विषय में प्राथमिक रिपोर्ट इसी कमरे से निकलती है। उसके बाद उस खबर के आधार पर जाँच चलती। अन्त में मीसा अवश्यभावी आता था। तड़के धावा और गिरफ्तारी। दिल्ली की सड़कों पर पुलिस की गाड़ियाँ दिन में कभी नहीं चलतीं। जिनके निर्देश पर इतनी सख्ती थी, सुना जाता था कि वे अपने सिंहासन पर अत्यन्त निश्चिन्त हैं। निश्चिन्त होने का क्या यही नमूना है ? इतनी सख्ती, धरपकड़ और गोली-गोलों की जरूरत उन्हें ही पड़ती है, जो हमेशा इस डर में रहते हैं कि गद्दी अब गयी, तब गयी। वे ही बहुत डरे-डरे रहते हैं। लेकिन क्यों ?

बिगाड़ने लगीं। जात्रा-नाटकों में नियति के चरित्र की भाँति ही वह तूफ़ान की तेज़ी से भारत के भाग्याकाश में अदृश्य प्रवेश और प्रस्थान करती रहती हैं। उस समय भी हँसते-हँसते वह परदे की ओट में ओझल हो गयीं।

देवादिदेव ने माथे का पसीना पोंछा। अभी तक विपुल था, देवादिदेव बेफ़िक्र था। अब उसे कौन बचायेगा ?

मनोज दबे बोले, 'तुमसे और काम भी है।'

—क्या ?

मनोज ने एक नाम बताया। देवादिदेव को बिजली छू गयी। बोला, 'क्यों, कुछ जानते हो ?'

—नहीं, मुझे किसी ने कुछ नहीं बताया। फ़ैसला लेने की स्थिति में हम अभी नहीं हैं। हममें से कोई अफ़सर कुछ दिनों से सिर्फ़ चपरासी या ड्राइवर का काम कर रहे हैं। ख़बर पहुँचा देते हैं। किसी को यहाँ से वहाँ ले जाते हैं। ले जाते वक़्त अपनी गाड़ी ख़ुद चलाते हैं। शोफ़र वाली विभागीय गाड़ी नहीं लेते। यही हमारा काम है।

—ऐसा क्यों करते हो ?

—टिके रहने के लिए।

—सचमुच क्या नवल, नौनिहाल और पिल्लई को अरेस्ट किया गया है ?

—ज़रूर।

—ओह !

—क्या हुआ ?

—नवल, पिल्लई !

—उन्होंने आप ही अपने पर मुसीबत बुलायी।

—तुम नवल के...!

—साला हूँ। मेरी पत्नी बहुत ख़फ़ा हो गयी है। चलो।

—इन महिला ने जो भी कहा...।

—सब सच हो सकता है। और सभी कुछ ठीक-ठीक करने के बाद भी अगर ऊपर से विपरीत निर्णय आये तो यह बड़े आराम से कह सकती हैं कि बाबू से जो कहा था वह ध्यानमग्न अवस्था में सपने के निदेश से

वहा था। यह कहकर तुम्हें-मुझे फँसा कर यह हिमालय की ओर प्रस्थान कर सकती है। हम यहाँ बड़े कठिन दिन गुजार रहे हैं, देवादिदेव ! मुझसे कुछ न कहो।

देवादिदेव को मनोज दवे ने एक और स्थान पर पहुँचा दिया और अचानक उससे अलग हो गया। उस रात वह भी मीसा में धर लिया गया। राजधानी का अंधकार और सर्वव्यापी मीसा मिल-जुल कर वातावरण पर हावी थे।

मनोज दवे ने उसे जहाँ पहुँचाया था, वह सन् 1911-12 में बना भवन था। बड़ा-सा बगीचा था। बड़े-बड़े वृक्षों की नीरवता के बीच मकान सोया पड़ा लगता था। जिनके इस भवन में यह दफ्तर खुला था दुनिया में अपना सहारा वह आप और उनकी लंगोटी थी। सहज और आडंबररहित जीवन के लिए वह प्रसिद्ध थे। उनसे मिलने के लिए एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते समय कड़ी सुरक्षा-व्यवस्था पार करना पड़ती थी। देवादिदेव को लगा कि शिक्षा-समाचार-संस्कृति जगत के बहुत-से लोगों को मीसा में ग़ायब करा देने के बाद यह भलेमानुस डरे-डरे-से हैं। कोई भी बदमाश बम मारकर उन्हें भी ग़ायब कर सकता है।

एक बड़ा-सा हॉल था। कमरे के दोनों ओर छत के क़रीब चमकीली ट्यूबें जल रही थीं। रोशनी के नीचे लम्बी मेज थी। मेज पर चमकीली रोशनी थी। अच्छी पोशाकें पहने क़तार-की-क़तार औरतें पत्रिकाएँ उलट रही थीं। भारत की सारी पत्र-पत्रिकाएँ यहाँ आती थीं। कहाँ से कौन-सी आपत्तिजनक रचना प्रकाशित हो रही है, इस विषय में प्राथमिक रिपोर्ट इसी कमरे से निकलती है। उसके बाद उस ख़बर के आधार पर जाँच चलती। अन्त में मीसा अवश्यंभावी आता था। तड़के धावा और गिरफ्तारी। दिल्ली की सड़कों पर पुलिस की गाड़ियाँ दिन में कभी नहीं थमतीं। जिनके निर्देश पर इतनी सख्ती थी, सुना जाता था कि वे अपने सिंहासन पर अत्यन्त निश्चिन्त हैं। निश्चिन्त होने का क्या यही नमूना है ? इतनी सख्ती, धरपकड़ और गोली-गोलों की ज़रूरत उन्हें ही पड़ती है, जो हमेशा इस डर में रहते हैं कि गद्दी अब गयी, तब गयी। वे ही बहुत डरे-डरे रहते हैं। लेकिन क्यों ?

यह डर क्यों ? उद्योगपति खुश हैं, क्योंकि वे मुनाफ़ा लूट रहे हैं। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। अधिकार के लालची खुश हैं, क्योंकि इतनी क्षमता उनके हाथों में कभी न आयी। प्रशासन में पुलिस खुश है, क्योंकि रात बीतते-बीतते उन्होंने इतने लोगों को मीसा में कभी नहीं पकड़ा। जमींदार-महाजन खुश हैं, क्योंकि खेतमजूर और बटाईदारों का इतना शोषण उन्होंने कभी नहीं किया। ऊँची जाति के लोग आंध्र और बिहार में खुश हैं, क्योंकि निम्नवर्ग और हरिजनों पर इसके पहले इतने अधिक अत्याचार उन्होंने नहीं किये। सत्ताधारी राजनैतिक दल खुश हैं, क्योंकि नक्सलियों और विरोधी दलों के खिलाफ़ ऐसी गुंडागर्दी और इतने हमले उन्होंने पहले कभी नहीं कराये। 1971 में वरानगर-काशीपुर में सामूहिक हत्या करके भी वे गौरव के साथ साफ़ बच गये। देवादिदेव का दल खुश था, क्योंकि आपातकालीन स्थिति में उन्हें हर तरह से कल्याण दिखायी दे रहा था। सब-कुछ अच्छा-अच्छा था। कर्णधार के मन में डर क्यों है ? उनके काम डर के कारण हो रहे हैं। भयंकर भय मनुष्य को इतना निष्ठुर और निर्दयी बना सकता है। डर के साथ-साथ है, सत्ता में बने रहने की अदम्य इच्छा। जो हो रहा है, वह अच्छा ही हो रहा है। जो देश और राष्ट्र जैसा होता है, उसे वैसा ही प्रशासन मिलता है।

कमरा पार करते-करते देवादिदेव ने अचानक एक कोने में अपने सुपरिचित मृत्तिका-कलाकार मातंग बारण पाल को देखा। वह चौंक पड़ा। राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित मातंग पाल यहाँ क्या कर रहे हैं ?

—आप यहाँ ?

—हिल्सा।

—हिल्सा !

—बच्चे से बड़े होने तक हिल्सा की तरह-तरह की शक्लें बना रहा हूँ, मोशाय ! यह कमीशन का काम है।

देवादिदेव आश्चर्य में पड़ गया। हिमालय की बर्फ़ के रुपहले पानी वाली नदियों के उद्‌गम पर हिल्सा-पालन का अवास्तविक मामला, राष्ट्र के लिए कितना महत्वपूर्ण हो गया है, बिजली कौंधने की तरह वह समझ गया। इलिश योजना अवास्तविक है, कहते ही विपुल मित्र का मंत्रि-पद

चला गया। बेचारा विपुल ! हिल्सा को बचपन से अब तक उसने तरह-तरह से खाया है। उसके घर ही देवादिदेव ने सबसे पहले भुनी हुई पूरी इलिश रोस्ट खायी थी। वह आगे बढ़ रहा था। चलते-चलते याद आया कि बचपन में वह रथ के मेले में रुपहले रंग की मिट्टी की हिल्सा खरीदता था। याद आया इलिश परियोजना का दफ्तर और मत्स्य-विशारदों की कॉलोनी बनाने के लिए हिमालय की तलहटी में दो गाँव समाप्त कर दिये गये थे। गाँववालों को जमीन के बदले में पथरीली जमीनें दी गयी थीं।

देवादिदेव परदा हटाकर एक छोटे-से कमरे में घुसा। एक सेक्रेटरी उसे खास कमरे तक ले गया था और दरवाजा बंद कर वह बाहर निकल गया। साउंडप्रूफ कमरे में घुसते ही देवादिदेव को दीवार पर शीशे के फ्रेम में इलिश मछली के बच्चे से बड़ी होने तक के आकारों की शक्लें दिखायी दीं। बच्चा इलिश, पत्नी इलिश, बड़ा इलिश—सब तैर रहे थे। उसे याद आया कि बुद्धदेव बसु ने भी तो इलिश संबंधी एक कविता लिखी थी।

विशाल मेज के उस पार जो बैठे थे वह थे वृद्ध, स्वस्थ, धूर्त और निष्ठुर। मेज पर बड़े अक्षरों में धमकी लिखी थी, 'नो स्मोकिंग प्लीज।' वृद्ध को धूम्रपान पर आपत्ति है। वृद्ध शुरू की बातचीत के बाद चट-से काम की बात पर आ गये।

—देवादिदेव, तुम्हारा घर वापस जाना जरूरी है।

—घर लौटना ?

—समझने की कोशिश करो।

—नहीं समझा।

—तुमसे असुविधा हो रही है।

—क्यों ?

—तुम्हारे लेखन में से धीरे-धीरे भारतीयत्व गायब होता जा रहा है। नहीं, नहीं, दल के लोगों की प्रशंसा ही काफी नहीं है। मैंने सोचा था कि हेमाद्रिराजन की तरह तुम्हारे लिखने में भी वैसा कुछ रहेगा, जिससे दूसरा पक्ष शांत रहे। वह नहीं हो रहा है, देवादिदेव।

—क्यों ? मेरी आत्मकथा...।

—एक नॉनसेंस बन गयी है।

—आप यह नहीं कह सकते हैं।

—वह अर्धसत्यों से भरी पड़ी है। उसमें सच बातें कहाँ हैं ? तुम्हारा जीवन क्या पहले संग्राम और बाद में शुद्ध सफलता है ? पराजय की बात कहाँ है ? अजीब लिखा है तुमने जिसे नक़ली कहा जाना चाहिए।

—नक़ली !

—नहीं तो इतनी विपरीत आलोचना होती ? देख ही रहे हो, आत्मकथा का बहुत-सी भाषाओं में अनुवाद कराने पर भी फ़ायदा नहीं हुआ। जो कुछ किया, उससे फ़ायदा नहीं हुआ। तुमसे अधिक लाभ तो हेमाद्रिराजन से हुआ।

—आप लोग कहते तो हैं। मैंने बहुत बार उसकी किताब पढ़ने की कोशिश की, पढ़ नहीं सका। इस तरह से एक...।

—आहा, बड़ी ख्याति का लेखक था। लेकिन जो लिखा था, उससे उसके समय के भारतवर्ष को जाना जाता था। साहित्य को लेकर सरकारी शोरगुल तो 1947 साल के बाद से ही शुरू हुआ। उसे बहुत पहले से 'भारत-प्राण' कहा जाता था न !

—लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगता है।

—तुम्हारा यह नकचढ़ापन ही तो नुक़सान कर रहा है। हेमाद्रिराजन मोटी धोती पहनता था, बातचीत में भदेस था, लिखने में पालिश नहीं थी। लेकिन आंध्र के शबर लोगों के बारे में कैसी कहानियाँ-उपन्यास लिख गया। मुझे तो लगता है कि उसकी पुस्तकें समाज के दस्तावेज़ हैं।

—भाषा बहुत ख़राब थी।

—जिस भाषा में देश की जनता बात करती है, उसी भाषा में वह लिखता था। अपनी कहानियों में जो भाषा लिखते हो, वह जनता की भाषा नहीं है, देव !

—सचेतनता का अभाव था। आधुनिक जीवन का संघर्ष उसकी समझ से बाहर था। इसीलिए परिचित चीज़ों को छोड़कर शहर की बात लिख ही नहीं सका। सिर्फ़ इतना होना ठीक नहीं। मैं गांव पर लिखता हूँ, शहर पर भी...सचेतन लेखक सब तरह के जीवन पर ही लिखेंगे।

—सचेतनता ?

वृद्ध चिढ़ उठे। गुस्से से गरजकर बोले, 'सचेतनता क्या होती है ? बाजार में बिकती है ? खरीदी जा सकती है ? तुम ही केवल सचेतन साहित्य लिखते हो, और कोई नहीं लिखता ? शरत्चन्द्र को पढ़ो, प्रेमचन्द पढ़ो, ताराशंकर पढ़ो। उनकी-सी-कौन-सी रचना तुमने, सचेतन साहित्यिकों ने लिखी है, सुनूं तो ? वही भारतवर्ष पढ़ो। आज का भारतवर्ष नहीं। तुम्हारे मुंह पर भारतवर्ष का नाम ही हास्यास्पद लगता है। तुम्हारे विरुद्ध युवकों ने खूब आलोचनाएँ लिखी हैं। तुम अपने देश, समाज और समय के बारे में जानबूझ कर अर्ध-सत्य लिखते हो, जो उनकी राय में पूरी तरह झूठ लिखने से भी अधिक धोखे की चीज हैं। तुम्हारे खिलाफ उन्हें...।'

—आप शंकरदयाल की बात कर रहे हैं।

डर, भयंकर डर। जो पत्र-पत्रिकाएँ छिपाकर प्रकाशित की जाती है, वे इनके दफ्तर में मौजूद हैं—बिलकुल स्वाभाविक बात है। भारत सरकार के ये विभाग अनुसंधान और विश्लेषण दफ्तर, निर्दयता और दक्षता में संसार के उन्नत देशों के समान हैं, एकदम उनके निकट हैं। किन्तु उनमें छपी देवादिदेव के विरुद्ध आलोचनाओं को वह अवश्य पढ़ेंगे और देवादिदेव को उनकी बात सुननी पड़ेगी ? डर, भयंकर डर।

—सभी शंकरदयाल हैं जी। मैं वही बात कह रहा हूँ। तुमसे आशा की गयी थी कि तुम सभी कुछ खोलकर सच-सच लिखोगे। बड़ा अच्छा अवसर मिला था। एक ईमानदार आत्मकथा लिखने से काम चल जाता। तुमसे आशा थी कि तुम नक्सली लड़कों से मिलोगे, उनके विश्वासपात्र बनोगे।

—वे मुझ पर विश्वास नहीं करते।

—वे तुम पर विश्वास नहीं करते ? तुम्हारे समय का कोई लेखक विश्वास नहीं करता। तुम कायर हो।

—क्यों ?

—तुम्हारी आत्मकथा में मनन दत्त का नाम नहीं है, उससे तुम्हारी जान-पहचान थी, घनिष्ठता थी, बहुत दिनों तक तुम दोनों साथ-साथ पार्टी में थे, एक ही अखबार में भी काम किया था। हाँ, मनन नक्सल हो गया, वह मर गया। मरे आदमी का नाम लेने में भी इतना डर ? केवल उसका

नाम लेने-भर से, उसे सम्मान देने से कहीं काम चलता है !

—नहीं समझा।

—स्वाभाविक है कि शंकर आदि तुम्हें नहीं वख्शेंगे। शंकर तुम्हारे विरोधी दल में शामिल हो तो सोने में सुहागा है। पांचजन्य चटर्जी ने उस दिन लिखा था : कलकत्ता में जिस रोज़ दिन में ही दुःस्वप्न अवतरित हुआ तो देवादिदेव ने जो हमारा मार्ग-दर्शन कर सकते थे, उस रक्तरंजित समय में दो उपन्यास लिखे—'श्रावण संध्या में', 'मन की गहराई में अकेला'। बुजुर्ग लेखक की यह आत्मरति अकल्पनीय है।

अँग्रेज़ी के एक वहुत विकने वाले साप्ताहिक का पन्ना खोलकर पांचजन्य के लेख से वृद्ध फरफर पढ़ रहे थे। देवादिदेव के कलेजे में क्लान्ति, भयानक क्लान्ति थी—मानसिक क्लान्ति, शारीरिक नहीं। देवादिदेव नियमित रूप से विटामिन की गोलियाँ, प्रोटिनेक्स इत्यादि खाता रहता था। जीवन-भर इसी क्षुद्र ईर्ष्या और क्षुद्र आक्रोश के साथ रहना पड़ा है। पांचजन्य को देवादिदेव ने ही पहला मौक़ा दिया था। दुवला-पतला काला लड़का, वहुत ही होशियार था। एक अभागे गिरोह में शामिल हो गया था। देवादिदेव की चन्द्रसभा में लेक के किनारे गिटार वजाकर कविता पढ़ रहा था। पांचजन्य को बुलाकर उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के कार्यालयों में उसका सबसे परिचय करा दिया। वही पांचजन्य !

—यह क्षुद्र क्या है ?

—इस पर भी तुम्हें छुटकारा नहीं मिलता। तुम्हें वनाया गया है, तुम्हारी भावमूर्ति—तुम्हारी इमेज वनी है। तुम सदैव अपनी सुरक्षा की वात क्यों सोचते हो ? सोचकर देखो, हेमाद्रिराजन को तुमसे इतनी अधिक श्रद्धा क्यों मिली ?

वहुत डर लग रहा था। वृद्ध कहना क्या चाहते हैं ? आँखें एक्स-रे की किरणों-सी हैं। देवादिदेव के भीतर तल तक देख डालती हैं। देवादिदेव उनका वनाया हुआ है। जिसने देवादिदेव की मूर्ति गढ़ी हो, वह उसे तोड़ भी सकता है। वेदी पर धूमधाम से विठाकर पूजा की जाती है और उसके वाद किस अवहेलना से पचास हज़ारी जरी की प्रतिमा विसर्जित

करके क्या नयी मूर्ति के लिए वेदी खाली [illegible]
का यही नियम है। आह्वान विसर्जन के [illegible]
ही स्वरूप में चिरस्थायी नहीं रहते। [illegible]
बनना होता है।

—तुम्हारा अपनी पत्नी के साथ [illegible]

—क्यों ?

—तुम्हारी पत्नी-बच्चे तुम्हारे [illegible]
नहीं जाते ?

—ईप्सिता को वह सब पसन्द [illegible]

—उसका तुम्हारे साथ बाहर [illegible]

—कहूँगा। सुनेगी या नहीं, वह [illegible]

—आजकल क्या कर रही है ?

—वही लायब्रेरियन वाली [illegible]

—बच्चे ?

—दो लड़के कानपुर में [illegible]

—कहाँ ?

—सेंट जेवियर्स में।

—वेड़ !

—माँ के आग्रह पर। [illegible]
को अँग्रेजी स्कूल-कॉलेज में [illegible]

—और तुम इधर [illegible]

—वाह, क्या [illegible]

—वही तो कहता हूँ। [illegible]
था। तुम लोग जो [illegible]
मेल नहीं। अपने बच्चों को [illegible]
नौकरी करने विदेश भेजते हो। [illegible]
एक्जीक्यूटिव बनाने का [illegible]
सहने-मरने की जिन्दगी [illegible]

—सचमुच। [illegible]

—होते जा रहे हैं, क्यों कहते हो ? कहो, हो गये हैं।

—हो गये हैं।

—लेकिन ईप्सिता को किस पर आपत्ति है ?

—वह सोचती है कि मैं हमेशा से ही बेईमान हूँ।

—अफ़सोस है !

वृद्ध ने सिर हिलाया। नहीं, बलवंत के मर जाने से बहुत नुक़सान हुआ है। मरा था छोकरा तीस बरस पहले। उसकी भावमूर्ति, उसकी इमेज भी काफ़ी बनायी गयी थी। लेकिन बाईस बरस तक गद्य लिख कर किसी छोकरे की इमेज इतनी बड़ी नहीं हो जाती कि वह हेमाद्रिराजन की मूर्ति को पीछे छोड़ दे।

वह लड़का भी क्या मर्द-बच्चा था ! वह और आदमियों की तरह न था। उसके बारे में उन्हें भी पता है। उसके माँ-बाप उस पार से आये थे। हाँ, उस वक़्त सीमा नहीं थीं। बंगाल संयुक्त था। बासठ साल पहले वह कलकत्ता में पैदा हुआ। बाप स्कूल-मास्टर थे। माँ बचपन में हैज़े से मर गयी। रानी भवानी स्कूल। रिपन में पढ़ते-पढ़ते 'बंगाल के किसान' अख़बार से सम्बद्ध। जेल से छुटकारा बयालीस में। पेट में अल्सर। तैंतालीस, हाँ तैंतालीस में उसे देवादिदेव बना दिया गया था।

किन्तु किसी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उन दिनों देवादिदेव जिनके साथ गिरफ़्तार हुआ था, जेल में वे जिस श्रेणी में भी रहें, उसने खुद प्रथम श्रेणी का क़ैदी बनने के लिए अनशन किया था।

मूर्ख, महामूर्ख व्यक्ति ! बुरा नही, लेकिन ज़रूरत से ज्यादा बेवकूफ़ होना गड़बड़ है। जेल में प्रथम श्रेणी का राजबन्दी हुआ, किन्तु किसानों के साथ जेल तो गया था। वे अपने संस्मरण नहीं लिखते, कष्ट और बेचैनी की बातें मन में लेकर बैठे नहीं रहते। ऐसी बातें लिखते हैं दीमक-जैसे चरित्र के लोग। जहाँ कहीं अच्छा और शोभन दिखायी पड़े, उसे टुकड़े-टुकड़े कर नष्ट कर देना चाहिए। देवादिदेव के संबंध में इतनी बातें सोचकर दिमाग़ में रखने की ज़रूरत ही क्या है ? मन की बात मन में ही क्यों नहीं रखी ? लिखने क्यों बैठा ?

वह आदमी भी कम नहीं है। कमाता था तो पत्नी को उससे नौ सौ

करते लिखते थे। कभी में घर-गिरस्ती। सौमितान के साथ दो बेटों को भी तैयार किया। यह ठीक है कि वे अच्छे विद्यार्थी थे, मेधावी। स्कॉलरशिप-फ़ेलोशिप पाते-पाते दोनों भाई दूसरे रास्तों को चले गये। बड़ी-बड़ी बातें और बहुत अधिक विश्वास के बाहर के लिए। पर बहुत तंग, जिन्दगी बहुत ही व्यवस्थित थी।

स्वाति के बारे में पोस्टमार्टम रिपोर्ट के सरकारी मन्तव्य को चाहें तो कुछ दिनों एक घेरे में उलझाकर रख सकते हैं। फ़ायदा क्या? अभी उसकी ज़रूरत है। उसे ही बनाया गया है, उसे ही पकड़कर रखा जायेगा। पावडन्स बहुत उच्छृंखल लड़का है। नहीं तो उसे ठीक किया जाता।

देवाशिष बेचैनी में घुटे जा रहे थे। बुजुर्ग उनकी बात सोच रहे हैं, याददाश्त के पन्ने उलट रहे हैं।

बुजुर्ग ने आँखें उठायीं। बोले, 'किस तरह से क्या किया जायेगा, पता नहीं। लेकिन ईन्दिरा को अपने ढंग से सोचो। हाल ही में क्या लिखा है?'

—'अकेलेपन के दर्पण में'।

—वह क्या है?

—उपन्यास।

—विषय-वस्तु?

—बड़े घर के पिता के साथ बेटे का वैचारिक मतभेद है। ड्रग-एडिक्ट बन जाता है। पिता की रखैल लड़के के निकट माँ की प्रतिमा बन कर रहती है। लड़का एक नर्स से शादी करता है। नर्स अपने पहले प्रेमी को भूलने से...पिता की रखैल के प्रेमी के साथ..।

—बैड! वेरी बैड!

—नहीं, रचना...।

—तभी तो डेविड मल्होत्रा कह रहा था कि तुम इस तरह का कूड़ा लिख रहे हो। इस तरह की पश्चिम से ली हुई अस्वाभाविक समस्याएँ भारतीय पृष्ठभूमि पर थोप रहे हो। इसी से तुम्हारी रचनाएँ अपना महत्त्व खोती जा रही हैं। हमें तो यह ऐसा कूड़ा लग रहा है कि औरतों की मैगज़ीन में भी छपने लायक नहीं।

—लेकिन बहुत प्रशंसा हुई है।

—किसने प्रशंसा की ? तुम्हारे बनाये दल ने, जो तुमको पसन्द करते हैं, उन्होंने अकाल के समय तैंतालीस में जो लिखा, उसी तरह की अंतरंगता से बड़े स्केल पर कुछ महत्वपूर्ण लिखो। दूसरी भाषाओं का साहित्य पढ़ते हो ? दक्षिण की जेल, उड़ीसा का आदिवासी समाज—इन विषयों पर लिखे उपन्यासों को कभी पढ़ा है ?

—नहीं, पढ़ा नहीं।

—क्यों नहीं पढ़ा ? किताबें नहीं मिलतीं ?

—नहीं ! अनुवाद तो भेजते हैं।

—फिर ?

—यानि दूसरी भाषाओं में जो लिखा जा रहा है...।

—वह बँगला साहित्य से ख़राब है, यही न ? लेकिन यह ग़लती है, देव ! तुम्हारे आधुनिक साहित्य में भारतवर्ष, भारत का आदमी अनुपस्थित है। तुम्हारी रचनाओं में भारतवर्ष कहाँ है ? आदमी कहाँ है ? नहीं देव, घर लौट आओ। अगर आ सको तो...।

देवादिदेव के रक्तप्रवाह की तेज़ी सो गयी थी। बंधन-रहित, आनन्दमय उन्मत्त पागलों-सी भाग-दौड़। श्वेत रक्तकण, लाल रक्तकण, रक्तरस—सभी कुछ कलकत्ता के गंदे रास्तों पर इकट्ठे हो गये पानी में कूदता भिखारी लड़कों का समूह हो गया है।

—अभी तुम पा सकते हो, तुम्हें अवश्य मिलेगी।

—बहुत देर नहीं हो जायेगी ?

—अभी तुम्हारी उम्र बासठ वर्ष की है।

—लेकिन मुझे तो नहीं लगता।

—क्या लगता है ? चौबीस के हो ?

—ऐसा नहीं...।

—अभी भी तुम झूठ बोल रहे हो। कहना चाहते हो कि तुम अपनी उम्र के हिसाब से बुजुर्ग नहीं, युवक लगते हो। लेकिन कभी-कभी लड़कों के साथ मिलकर शोर-शराबा करने, बरसात में भीगने के लिए निकल पड़ने से क्या युवा बना जा सकता है ? तुम्हारी रचना, तुम्हारा जीवन—इनसे सभी-कुछ जाहिर हो जाता है। जिस सुख और आराम से तुम रहने

हो, वह बुढ़ापे के लक्षण हैं। पिछले दस बरसों में ऐसी दस पंक्तियां भी तुमने नहीं लिखी जो कुछ महत्व की हों।

—किन्तु...।

—टोको मत, सुनना भी सीखो। तथाकथित वामपंथी रुख अपनाकर लिखते रहने की कला कोई निरापद खेल है, देवादिदेव ! हां, खेल। देश-देश की जनता जिस हालत में है, उसमें विरोध के बजाय समर्थन की कोई गुंजाइश नहीं है। इसीलिए वामपंथी विचारधारा पकड़ना जरूरी है, जिससे सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे...जहर से जहर मारा जाये। कांटे से कांटा निकालना दुनिया का बहुत पुराना दस्तूर है। इसलिए तथाकथित वामपक्ष एक प्रेक्षण का प्रतिमान बन जाता है और उसमें तुम प्रेक्षित बन जाते हो। वामपक्ष जो कि तुम्हारा आश्रय है, वह भी अंत में एक व्यवस्था, एक इस्टेब्लिशमेंट बन जाता है। इसके फलस्वरूप मामला पहुंचा तो कहां पहुंचा ?

—क्या ?

बुजुर्ग खी-खी कर हँस रहे थे। कह रहे थे, 'देख नहीं रहे हो। तुम भी अब एक व्यवस्था हो। तुम सभी वामपंथी, जनता के आदमी हो। और तुम्हारी जीवन-यात्रा, जीवनयापन का आदर्श और तौर-तरीका—सभी व्यवस्था के सेवक हैं। तुम लोगों का काम्य उच्चमध्य वर्ग का जीवन है। कंपनी के बॉस लोगों की तरह तुम भी देश की ओर से शुतुरमुर्ग की तरह आँखें बंद किये रहते हो। वे पार्टी देते हैं, बचाव तलाश करते हैं। तुम्हारा पलायन तथाकथित विरोध-साहित्य में होता है। तुम्हारी संतानें कॉन्वेंट में या अन्य किसी अच्छे स्कूल में पढ़ती हैं, विदेश जाती हैं, स्वदेश में अच्छी नौकरी करती हैं।

—सब ऐसा नहीं करते।

—क्योंकि वे ऐसा नहीं कर सकते। कर सकने पर जरूर करेंगे। वामपंथी होने पर दोनों दुनिया के दरवाजे खुले रहते हैं। आया-जाया जा सकता है।

—आप क्या कह रहे हैं ? डर लगता है।

—न-न, डर, गुस्सा, दुख—ऐसा कोई भी तीखा अहसास तु

लिए संभव नहीं है। अच्छा प्रबंध, अच्छी व्यवस्था है। तुम बड़े ही अहम तरीक़े से अशक्त हो गये हो।

—आप बहुत कटु हो रहे हैं।

—क़तई नहीं। हाँ, आलोचना कर रहा हूँ, आलोचना। विकास तत्व के बारे में पता है? पमपम-गीत किस तरह चॉकलेट-गीत बन जाते हैं? तुम्हारी विरोध-रचनाएँ भी वैसी ही हैं। ढेरों साहित्य रच डाला। कुछ नतीजा निकला? निकले कैसे? वह क्या साहित्य है? जिस भाषा, जिन शब्दों में साहित्य लिखा जा रहा है, वह अशक्त भाषा, अशक्त शब्द है? जिस दिमाग़ से लिखा जा रहा है, दरअसल वह दिमाग़ ही अशक्त है। अशक्त से किसे डर लगता है?

—सारा-का-सारा, सभी-कुछ निषेधात्मक—नेगेटिव है?

—नहीं है? मध्यम वर्ग का साहित्यकार, मध्यमवित्तीय सुरक्षा तलाश करता हुआ मध्यमवित्तीय वामपंथ का प्रचार कर रहा है। काठ की तलवार से किसकी नाक कटती है? तुम हमारे हाथों बने हो। कभी ईमानदार थे, अब नहीं हो, स्वीकार कर लो।

—सभी ऐसे हैं?

—नहीं। क्या कोई शंकर या अमिताभ या सानन्द तुम जैसा है? और भी शक्तिशाली लेखक हैं। लेकिन वे सब दायरे से बाहर रहते हैं। वे लिख नहीं पाते, छप नहीं पाते। तुम अपने को युवक कहते हो? तुमको तो युवकों से डर लगता है।

—यह क्या कह रहे हैं आप?

—ठीक ही कह रहा हूँ। इसीलिए भारत तुमको अच्छा लगता है, देवादिदेव! भारतवर्ष तुम्हारी तरह प्रौढ़, मुझ जैसे बुड्ढों के लिए है। मेरे जैसा घाघ, कुचक्री, लोभी, स्वार्थी, अधिकारलिप्सु कौन हो सकता है? महाभारत के धर्मयुद्ध में भी प्रौढ़ युधिष्ठिर कैसे सभी को मारकर सिंहासन पर बैठे थे। उसका यही उद्देश्य था कि जो विरोध करते हैं, कर सकते हैं—ऐसा कोई न रहे।

—नयी व्याख्या है।

—क्यों नहीं, उसमें धर्म तो जीता था। धर्म को—सही उद्देश्य को,

जिताने के लिए सब-कुछ किया जाता है। यही महाभारत की शिक्षा है।

—लेकिन, जो बात कही थी...।

—हाँ। मिलेगा, मिलेगा।

—प्रिमंच्योर—अशोभन न होगा, क्या कह रहे हैं?

—नहीं होगा, व्याख्या कर दी है।

—किन्तु ..।

—क्या?

—घर लौटने की बात?

—वह तुम्हारा अपना मामला है।

—मेरा!

—बिलकुल। पुरस्कार मिलने पर लोग कहेंगे कि बच्चू ने बीच-बाजार अपने को बेच दिया।

—न लेने पर?

—लिये बिना तुम्हारा छुटकारा कहाँ है? जिन लोगों ने तुम्हें परित्यक्त कर दिया है—नकार दिया है, वे क्या कहेंगे? कहेंगे कि यह भी तुम्हारी चाल है।

सहसा शिराओं में रक्त ने करवट बदली।

अब रक्त का प्रवाह भिन्न था। उसमें आनन्द का नहीं, डर का अतिरेक था। देवादिदेव ने अचानक वृद्ध की अन्तर्भेदी एक्स-रे आँखों के भीतर देखा था। कैसा भयकर, भयानक षड्यन्त्र है! उसे पुरस्कार दिया जायेगा और उसे लेना पड़ेगा।

लेने के बाद ही उसकी भावमूर्ति, उसकी इमेज खंडित हुई, उसने चोटी से गिरना शुरू किया। घर लौटना न हुआ। लिये बिना छुटकारा भी नहीं था। अब देश के सारे दस्तावेज वृद्ध के अलक्ष्य अमोघ निर्देश पर लिखे जाते रहेंगे। जिस-जिस ने पुरस्कार लिये, उनका विवेक सहसा जाग्रत हुआ—इसका कारण क्या है?

वह क्या करे? कहाँ जाये? याद आये—ईप्सिता का मोम जैसा सफेद, पतला, झुर्रियों से भरा चेहरा, सफ़ेद बाल, थकी आँखें। थका-थका स्वर यह

लिए संभव नहीं है। अच्छा प्रबंध, अच्छी व्यवस्था है। तुम बड़े ही अहम तरीक़े से अशक्त हो गये हो।

—आप बहुत कटु हो रहे हैं।

—क़तई नहीं। हाँ, आलोचना कर रहा हूँ, आलोचना। विकास तत्व के बारे में पता है? पमपम-गीत किस तरह चॉकलेट-गीत बन जाते हैं? तुम्हारी विरोध-रचनाएँ भी वैसी ही हैं। ढेरों साहित्य रच डाला। कुछ नतीजा निकला? निकले कैसे? वह क्या साहित्य है? जिस भाषा, जिन शब्दों में साहित्य लिखा जा रहा है, वह अशक्त भाषा, अशक्त शब्द हैं? जिस दिमाग़ से लिखा जा रहा है, दरअसल वह दिमाग़ ही अशक्त है। अशक्त से किसे डर लगता है?

—सारा-का-सारा, सभी-कुछ निषेधात्मक—नेगेटिव है?

—नहीं है? मध्यम वर्ग का साहित्यकार, मध्यमवित्तीय सुरक्षा तलाश करता हुआ मध्यमवित्तीय वामपंथ का प्रचार कर रहा है। काठ की तलवार से किसकी नाक कटती है? तुम हमारे हाथों बने हो। कभी ईमानदार थे, अब नहीं हो, स्वीकार कर लो।

—सभी ऐसे हैं?

—नहीं। क्या कोई शंकर या अमिताभ या सानन्द तुम जैसा है? और भी शक्तिशाली लेखक हैं। लेकिन वे सब दायरे से बाहर रहते हैं। वे लिख नहीं पाते, छप नहीं पाते। तुम अपने को युवक कहते हो? तुमको तो युवकों से डर लगता है।

—यह क्या कह रहे हैं आप?

—ठीक ही कह रहा हूँ। इसीलिए भारत तुमको अच्छा लगता है, देवादिदेव! भारतवर्ष तुम्हारी तरह प्रौढ़, मुझ जैसे बुड्ढों के लिए है। मेरे जैसा घाघ, कुचक्री, लोभी, स्वार्थी, अधिकारलिप्सु कौन हो सकता है? महाभारत के धर्मयुद्ध में भी प्रौढ़ युधिष्ठिर कैसे सभी को मारकर सिंहासन पर बैठे थे। उनका यही उद्देश्य था कि जो विरोध करते हैं, कर सकते हैं—ऐसा कोई न रहे।

—नयी व्याख्या है।

—क्यों नहीं, उसमें धर्म तो जीता था। धर्म को—सही उद्देश्य को,

जिताने के लिए सब-कुछ किया जाता है। यही महाभारत की शिक्षा है।

—लेकिन, जो बात कही थी...।

—हाँ। मिलेगा, मिलेगा।

—प्रिमॅच्योर—अशोभन न होगा, क्या कह रहे हैं?

—नहीं होगा, व्याख्या कर दी है।

—किन्तु ..।

—क्या?

—घर लौटने की बात?

—वह तुम्हारा अपना मामला है।

—मेरा!

—बिलकुल। पुरस्कार मिलने पर लोग कहेंगे कि बच्चू ने बीच-बाज़ार अपने को बेच दिया।

—न लेने पर?

—लिये बिना तुम्हारा छुटकारा कहाँ है? जिन लोगों ने तुम्हें परित्यक्त कर दिया है—नकार दिया है, वे क्या कहेंगे? कहेंगे कि यह भी तुम्हारी चाल है।

सहसा शिराओं में रक्त ने करवट बदली।

अब रक्त का प्रवाह भिन्न था। उसमें आनन्द का नहीं, डर का अतिरेक था। देवादिदेव ने अचानक वृद्ध की अन्तर्भेदी एक्स-रे आँखों के भीतर देखा था। कैसा भयकर, भयानक षड्यंत्र है! उसे पुरस्कार दिया जायेगा और उसे लेना पड़ेगा।

लेने के बाद ही उसकी भावमूर्ति, उसकी इमेज खंडित हुई, उसने चोटी से गिरना शुरू किया। घर लौटना न हुआ। लिये बिना छुटकारा भी नहीं था। अब देश के मारे दस्तावेज़ वृद्ध के अलक्ष्य अमोघ निर्देश पर लिखे जाते रहेंगे। जिस-जिस ने पुरस्कार लिये, उनका विवेक सहसा जाग्रत हुआ—इसका कारण क्या है?

वह क्या करे? कहाँ जाये? याद आये—ईप्सिता का मोम जैसा सफ़ेद, पतला, झुर्रियों से भरा चेहरा, सफेद बाल, थकी आँखें। थका-थका स्वर यह

कहता हुआ—'जो सही समझो, सो करो ।' इससे सुख नहीं मिलता, शांति रहती है । अपने से अकेले में आमना-सामना हो जाता है । अपना उत्तर भी याद आया, 'उपदेश देती हो ?' ईप्सिता का उत्तर होता, 'नहीं, तुम्हें जरूर वही लगेगा । बहुत समय से तुम सभी-कुछ की शब्दों में व्याख्या करते हो, हर चीज की व्याख्या करते हो, हर चीज की मीमांसा करते हो । तुमने, अपने शब्दों को हर स्थिति में व्यवहार कर-करके अक्षम, पंगु बना दिया है । मैंने उपदेश नहीं दिया, सच बात कही । मेरी जानकारी में जो कुछ भी होता है, वही कह देती हूँ । प्रतिक्रियावादी, पेटी-बुर्जुआ लोगों की तरह बातें मत करो ।'

ईप्सिता ने थकी आँखों से उसकी ओर देखा था । कहा था, 'बत्तीस बरसों में कितनी बार ये बातें सुनी हैं । मैं हमेशा अपने साथ अकेली रहती हूँ, इसी से जो ठीक लगता है वही करती हूँ क्योंकि मुझे तो खुद के सामने बैठकर दिन बिताने पड़ते हैं । तुम्हारी जिंदगी में जरूर भीड़ बहुत ज्यादा है ।'

समझ नहीं आता कि ठीक क्या है ? क्या किया जाये ? पहले घर लौटने के संकल्प का प्रचार किया जाये । उसके बाद आत्म-विश्लेषण के लिए जनता के जंगल में न जाकर, निर्जन अरण्य में चला जाये । अरण्य सजा-सँवरा, निरापद होना चाहिए । अभी भी आम्नाटोकरी के भयानक जंगल की बात याद आने पर अंदर से सब-कुछ काँप उठता है ।

बरसात । उत्तरी बंगाल के भयानक, हिंस्र, विद्वेषी जंगल । सड़े पत्तों की कीचड़ बजबजाती हुई, तरल और चिपचिपी होती है । पैर रखो तो पैर भीतर धँस जाये । पैर निकालो तो जोंकें घुटनों से टखनों तक चिपक जायें । जोंक छुड़ाने का वक्त हमारे पास नहीं है, तिहैया चल रही है । उत्तरी बंगाल की भीषण वर्षा में लोग घरों से निकल मैदान में इकट्ठे हो जाते हैं । जिनके साथ चलो, वे एक बात भी न करें ।

एक बार तिस्ता नदी के किनारे आकर खड़ा हुआ था । समय नहीं है, जाना ही पड़ेगा । देवबाबू, जोंक छुड़ाइये । पर ललछौंही, काली, फूली हुई जोंक पैर छोड़ना ही नहीं चाहती । नहीं, आम्नाटोकरी के निर्दयी और दुश्मन जंगल की बात सोचकर आज भी डर लगता है । अब उस

तरह के जगलों में जाऊँ ही क्यों? तिहैया के बाद मे देवादिदेव बहुत रास्ता तय कर चुके है। कालाटोंर चलो। चीड़, पाइन, फ़र के जगलो में पेड़ों की तरतीब मे बड़ी बेफ़िक्री रहती है। पहाड़ और जमीन—ऊपर से देखने पर साफ़ दीखते हैं। भरे-भरे आकाश के तारों की तरह ढेरों फूलों के पराग के अलावा और कुछ उसके मूल्यवान पैरों मे नहीं लगेगा।

जगल में रहेगा, आत्मविश्लेषण करेगा। उसके बाद घर लौटेगा। हाँ, अब वह सब-कुछ करेगा। हस्ताक्षर-सग्रह के सभी अभियानों में हस्ताक्षर करेगा, असतोष प्रकट करने वाले सभी प्रदर्शनों में सम्मिलित होगा। युवक लोग फिर से उस पर विश्वास करेंगे। अभी तो उनकी आँखों में नकार का गहरा भाव रहता है। सार्वजनिक सभाओं में वे ढेरों सवाल पूछते हैं, शोर मचाकर उसे बिठा देते हैं। विश्वास खो देने वाला उसने ऐसा कौन-सा काम किया है? उन्हें क्या पता कि वह कौन है? उसकी इमेज नष्ट हो गयी है? फिर युवक यही कर सकते हैं। मूर्ति तोड़ते हैं, खींचकर गिरा देते हैं। हाय! अबोध युवकों को यह नहीं पता कि जिस पीठिका पर मूर्ति स्थापित की जाती है, वह कभी खाली नहीं रहती। उसकी मूर्ति ब्रिटिश वायसराय की काँसे या पत्थर की उस मूर्ति जैसी नहीं है, जिसकी पीठिका मूर्ति हटाने के बाद रास्ते के किनारे करुण क्षमा-याचना करती रहे। मूर्ति जनमानस मे बनानी पडती है। उसकी मूर्ति हटा देने पर अराजकता फैल जायेगी, जीवन असिपत्र वन का नरक बन जायेगा। उस अंधकार मे मार्ग फूल खिलाकर नहीं रखता। चलने पर वह चलेगा, असिफलक की तरह तीखी धार के पत्ते उसे खून मे तर-बतर कर देंगे। रक्तोत्सव तो बहुत हुए हैं। ये युवक यह बात समझते क्यों नहीं? देवादिदेव घर लौटेगा।

ये सभी बातें उसने ईप्सिता को बतायी थीं। वह दिल्ली से कलकत्ता लौटा था। ईप्सिता ने पूछा, "घर लौटोगे? अपनी, इमेज बरक़रार रख सकोगे? घर तुमने आज तो नहीं छोड़ा?"

—कब छोड़ा था?

—अपने मन मे पूछो। पूछने के लिए ही तो जगल मे जा रहे हो।

—वह 'कभी' जिसकी भूमिका निभाने के लिए तुम 'तुम' हुए थे, तब भी तुम पूरी तरह से ईमानदार नहीं थे। रोकना मत, आत्मान्वेषण करने जा रहे हो। छाती के भीतर कोना-कोना खोज डालो। देखो, गिरावट कब से शुरू से हुई थी? ईमानदार बनो, इससे बड़ी कोई और बात नहीं है, कभी भी नहीं है।

—करूँगा ईप्सिता, करूँगा।

—लौटकर पाओगे कि मैं ठीक हूँ। मुझे कभी-न-कभी तो मरना है। आप पर श्रद्धा लेकर मरने दो।

ईप्सिता ने बहुत दिनों से इतनी बातें एक साथ नहीं कही थीं। देवादिदेव के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था। टूट गया था, गलकर धीरे-धीरे भीतर उतर रहा था।

—यदि वे लोग मुझे पुरस्कार दें?

—पुरस्कार लौटा देना। तुम्हारी पुस्तकों से काफ़ी आमदनी है। दोनों लड़के काम करते हैं, रुपये भेजते हैं। मैं नौकरी करती हूँ। सुमन को भी पढ़ाई समाप्त करते ही काम मिल जायेगा।

—किन्तु...?

—लौटा देना।

औरतें आख़िर औरतें ही रहती हैं। ईप्सिता को देवादिदेव किस तरह समझाता कि कमेटी में रहे या न रहे, यहाँ रहे या विदेश में रहे, वृद्ध द्वारा चुना गया व्यक्ति वही है। सारे शस्त्र उसी के हैं, सारी शक्ति भी उसी की है। भीरू की तरह वह गले की बाईं मुख्य रक्तवाहिनी नली काटकर, मस्तिष्क में झटका देकर आदमी को नहीं मारता, क़तई नहीं मारता। बर्बरता से उसे सदा से घृणा रही है। किन्तु देवादिदेव बनकर प्रकाश राय, सानन्द मिश्र, पलाश सरकार, नरसिंहम् पिल्लई, शंकरदयाल, अमिताभ दबे, तमाम लोगों का वह संहार कर रहा है। साहित्य-क्षेत्र से वे बहिष्कृत हैं। सशरीर ज़रूर मौजूद हैं, लेकिन अनुपस्थित हैं। मात्र शरीर की उपस्थिति से तो व्यक्ति उपस्थित नहीं रहता।

शिव बनकर संहार किया है उसने। ब्रह्मा बनकर सृजन और विष्णु बनकर उसने यत्नपूर्वक पालन भी किया है। दिलीपचंद भास्कर, मनीषी

सेन, अरुणिम दास, केकय कोहेन का। और भी कितने ही लोगों का। अलग में एक सेना ही है। उन्हें हथियारों से लैस कर दिया है। वे आज सर्वशक्ति-संपन्न हैं। युवा लेखकों की पीढ़ी तैयार की जा रही है। पांचजन्य चटर्जी बेईमान निकला, दल छोड़कर चला गया।

औरतें औरतें ही बनी रह जाती हैं। ईप्सिता किस तरह जानेगी उनके बारे में, जिन्हें जीवित रहने दिया गया! उनकी मस्ती देखकर वह बहुत खुशी होती। जिनकी जिन्दा रहने की संभावना नष्ट करके जिन्हें बेकार बना दिया गया था, उनकी आँखों में पराजय और निराशा देख कर क्या उसे आनन्द मिलता था? सानन्द, नरसिंहम्, अमिताभ—ये लोग अपनी अशरीरी उपस्थिति के कारण सभी कार्यक्षेत्रों—लेखन-प्रकाशन-आत्माभिव्यक्ति, सजीव भ्रामक जगत में बाहर थे। वे भी युवक हैं, वयस में युवक। उन्हें निकम्मा बना दिया है, यही आनन्द उसके रक्त में थिरकन भर देता था।

लेकिन अब यह सब-कुछ भूलना होगा। घर लौटना पड़ेगा। बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर होगी। वह किसी दिन बुजुर्ग की कुर्सी पर बैठेगा। टेलीफोन और वायरलैस से सारे देश के विचारों का नियंत्रण करेगा। जनता महामूर्ख है। हाइन की उस कविता का अनुवाद किसने किया था? 'जनता नाम का एक विशाल पशु है. ।' जनता को जो समझाओ, वही समझेगी। छापे के अक्षरों में जो दीखे, वही पाठ है, वही साहित्य है। अखबार या पोस्टर—सब में वही होगा। उस वक्त वह जो चाहेगा, देश वही करेगा। यह सोचते ही रक्त में क्रान्ति-संगीत बजने लगता है। कमज़ोर तनापात्र? 'इंटरनेशनल' बहुत अच्छा गाते थे। ऐसा गायन फिर कभी नहीं सुना। वृद्ध ही क्या सब-कुछ समझते हैं? इमेज अगर इतनी आसानी से टूटने वाली होती तो फिर सत्तर-इकहत्तर-बहत्तर में देवा-दिदेव 'सीमा के उस हार रक्त', 'अरुणांशु, सोये हो?', 'प्रियतमासु' लिखकर क्या वह टिका रह सकता था? वह यह सब-कुछ लिखेगा, इसीलिए दिलीप, मनीषी, अरुणिम केकयदेव बनाये गये थे। जिन्दा-स्तुति, आलोचना-प्रत्यालोचना के बावजूद 'हमारी एकमात्र आशा' कहानी ने एक आंदोलन का सूत्रपात किया है। आंदोलन अकाट्य सत्य है। उसके विरोधी

आलोचकों की शक्ति सीमित है, वे दुर्बल हैं। 'हमारी एकमात्र आशा' कहानी उनके चेहरों पर नापाम बम बन कर फूट पड़ी है। नापाम की चोट से कभी कोई ज़िन्दा बचा हो, किसी ने कहीं देखा है?

देवादिदेव ने ईप्सिता से वादा किया था कि वह जीवन-धारा में लौट कर आत्मान्वेषण करेगा। लोगों के कलेजों में उतर जायेगा। वह भगोड़ा नहीं है, न ही रोमांटिक है। वह चुनौती स्वीकार करेगा। ईप्सिता ने झूठ कहा था। उसकी बेईमानी, उसका घर छोड़कर निकलना उसके उज्जवल अतीत से आरंभ नहीं हुआ था, हो नहीं सकता था। उसे अपना हृदय टटोलना होगा। केवल ईप्सिता के लिए नहीं, हालांकि ईप्सिता और उसके बीच के अन्तर का मिट जाना ही अच्छा है। उम्र बढ़ जाने पर पुरुष अपनी पत्नी के पास पुराने संबंधों के सहारे लौटना और सुख पाना चाहता है। ईप्सिता ने जैसे उसे चेतावनी दी थी : पूरी तरह से ईमानदार बनना। उसने जवाब दिया था : न बना तो कहीं और चला जाऊँगा। जो कहना था, अनकहा रहने दिया। लेकिन 'हूं' अवश्य की थी। ग़ैर-राजनैतिक औरत और क्या करेगी? शायद लड़कों के पास चली जायेगी। नहीं तो अपने पिता के पास देवघर चली जायगी। लेकिन ईप्सिता को वह दिखा देगा।

यह सभी कुछ कालाटोप आने से पहले घट गया था। उसके बाद आगमन हुआ कालाटोप में। अकेला, बिलकुल अकेला। पेड़, जंगल, फूल, आसमान, पहाड़ कैसे बेचैनी से भरे थे! यह अजीब निस्तब्धता रात की थी। घर, प्रकाश, मनुष्य, बहुत सारी स्कॉच, ढेरों सिगरेटें, अनेक हवाहीन खिड़कियां, बंद कमरे, चहरे पर फ्लैश जलने का मज़ा, प्रशंसकों की तारीफ़ें, वृद्ध की सजग आंखों के पहरे में सुरक्षित रहकर तलवार भांजने का मज़ा—यही तो जीवन है। असहनीय हैं, असहनीय हैं जुलूस में शामिल मूर्ख, प्रजातंत्र के मध्यम, निम्नमध्यवर्गी लोगों, किसानों, मज़दूरों के चेहरे। लड़के भी दूर की याद हैं। कैसा चैन है। वृद्ध के कारण देवादिदेव छोटे बच्चे की तरह शरारती और भला बन कर कॉलिन्स का तम्बूरिन सुनता है। लेकिन कल से हृदय की खोज शुरू करना पड़ेगी। नहीं तो चार-चार दिन अकेले यहां रहेगा किस तरह?

रात को चौकीदार खाना लेकर आया। रोटी, उड़द की दाल और गुच्छी की तरकारी। इससे बातें की जायें। जनता से संपर्क रहेगा।

—यह किस चीज की सब्जी है?

—गुच्छी की।

—गुच्छी क्या होती है?

—बिजली और गरज के साथ बारिश होने पर देवदार पेड़ की जड़ में एक तरह की छतरी पैदा होती है, वही गुच्छी होती है। बड़ी महँगी चीज है। सैकड़ों रुपये किलो के भाव से यूरोप में बिकती है। हिमाचल प्रदेश और पंजाब के लोग बहुत पसन्द करते हैं।

—कितना वेतन मिलता है?

—क्या मिलता है, साब!

—कितने दिनों से काम कर रहे हो?

—दस बरस से।

—खुश हो?

—हाँ साहब! घर पर जमीन ख़रीद ली है। एक भैंस ख़रीदी है।

—मन से सुखी हो?

चौकीदार हँसा। उसने जवाब नहीं दिया।

—घर पर कौन-कौन है?

—घरवाली, बच्चे, पिता, ताऊ।

—घरवाली कौन?

—पत्नी।

—इसी वेतन में सबका गुज़ारा चल जाता है?

—चल ही जाता है।

बातचीत और आगे नहीं बढ़ी। देवादिदेव कमरे में चला आया। सिगरेट सुलगाकर लेट गया। शीशे की खिड़की के उस पार तारे दिखायी दे रहे थे। पिता कहा करते थे, तेरी माँ तारा बनकर देख रही है। उस समय भी देवादिदेव समझता था कि पिता झूठ बोल रहे हैं। विज्ञान पढ़कर उसे पता चला था कि तारों का प्रकाश जब धरती के लोगों को दिखायी देता है तो उस बीच बहुत-से प्रकाश-वर्ष बीत जाते हैं। बहुतेरे तारे टूट जाते हैं। लोग

सोचते हैं कि तारा विद्यमान है। माँ के लिए आकाश में तारा बनकर टिमटिमाना संभव नहीं है।

दूसरे दिन सुबह-सुबह वह डेज़ी फूलों से आच्छादित पहाड़ पर चढ़ा था।

बँगले से निकलने पर पहाड़ पास ही है। रास्ता घना छायादार और ठंडा-ठंडा था। बड़े-बड़े पेड़-पौधे एक के बाद एक क़तार बाँधे खड़े थे। पहाड़ बहुत ऊँचा न था। नीचे जो पेड़-पौधे देवादिदेव को मिले थे, ऊपर जाकर नहीं मिले। मामूली-सी चढ़ाई-उतराई थी। पहाड़ अधिक ऊँचा न था। हरी घास बिछी हुई थी, तारों के-से डेज़ी के फूल शुभ्र हँसी बिखेर रहे थे। इससे पहले देवादिदेव ने डेज़ी फूल कभी नहीं देखे थे। छुटपन में अँग्रेज़ी कविता में इस फूल का नाम पढ़ा था। भारत में डेज़ी खिलते हैं, यह मालूम ही न था। पहले पहाड़ों पर बहुत फूल देखे थे। बाद में फूलों की तसवीरों वाली किताब देखकर जाना था कि बचपन से जिसे पढ़ते आये यह वही बटरकप अज़ेलिया हैं। डेज़ी देखकर उसने मन-ही-मन उन्हें 'तारा फूल' नाम दिया था। विदेशी नाम-वाम उसे अच्छे नहीं लगते, उसे कुछ भी विदेशी पसन्द न था।

चारों ओर पहाड़-ही-पहाड़ थे। बर्फ से ढँके पहाड़ देखने के लिए कौसानी जाने की ज़रूरत नहीं, कहीं भी जाने की ज़रूरत नहीं, डलहौज़ी चले आओ। देख-देखकर देवादिदेव थक जाता। क्लांत, वह क्लांत हो जाता। पहाड़ पर बर्फ़ में, नीले आकाश-से सफेद मेघों में, ऊँचे देवदार वन में, पहाड़ी आदिवासी शिशुओं की नीली आँखों में उसे क्लान्ति दिखायी पड़ती। मुझे जनारण्य में लौटा ले चलो। लौटा दो लोगों से घिरी हुई वे सभी शामें, शीशे-जड़ी खिड़कियाँ, धुएँ से भरे कमरे, व्हिस्की पर तैरती बर्फ़। देख ली, खूब बर्फ देख ली। आसमान-वासमान देखे बिना भी सब-कुछ ठीक है। चित्त के इतना प्रकृतिस्थ हो जाने की क्या ज़रूरत है? प्रकृति क्या आदमी की परवाह करती है? सभी इंसान मर जायें, फिर भी चाँद और सूरज

इसी तरह निकलेंगे। कांचनजंघा का सूर्योदय, जैसलमेर का मरुस्थल या अन्दमन समुद्र में सूर्यास्त, वनपक्षी, तितलियाँ, फूल आदि झूठे इसमें वैसे ही बने रहेंगे। प्रकृति मनुष्य के बिना भी चलती है। मनुष्य प्रकृति को अपने ढंग में मेलने के लिए मिलाने को बेवकूफ़ की तरह परेशान क्यों है? देवादिदेव चित होकर लेट गया। आँखों पर हाथ रखकर उन्हें बंद कर लीं। चौकीदार ने बताया था कि यहाँ की घास में कोई कीड़े-मकोड़े नहीं होते।

बहुत भारी नाश्ता लिया था। लंबे अर्से से सुबह-सुबह इतना अधिक नहीं खाया था। नाश्ते में हाथों से बनी अच्छी रोटियाँ, शहद, मक्खन, उबला अंडा, दूध, क्रीम, दलिया, कॉर्नफ़्लेक्स थे। बहुत दिनों से छोटी हाजरी-बाजरी खाने की भी आदत नहीं रही थी। नाश्ता खाने की तबीयत भी नहीं होती थी।

देवादिदेव का सवेरा ही दस-साढ़े दस बजे होता था। असल में उनकी शराब की मजलिस रात दस के आस-पास शुरू होती। चलती, चलती, चलती रहती। जहाँ भी मजलिस होती, कोई खाली हाथ न आता। बगल में बोतल दबाये आता। शराब के साथ खाने का इन्तजाम उसका होता, जिसके घर मजलिस जमती। मजलिस में स्टीवडोर, सेना के ठेकेदार, मार्मी टॉक्टर, सिनेमा हॉल के मालिक, पुराने रईस लोग होते थे, इसलिए खाना शानदार होता। केकड़े का मांस, कैवियेर, सॉसेज, बीफ़ कबाब, चिकेन रोल। स्टीवडोर की पत्नी मछली की हज़ारहा डिशें बनाती। उन्हीं के मकान पर देवादिदेव ने हिल्सा मछली का स्वादिष्ट पकौड़ा खाया था। वे भाँगों की पीस कर धनिए के पत्ते मिलाकर बड़े बनातीं। वह महिला चपटी सेटकी मछली का जैसा रोल बनाती थीं, देवादिदेव उसी से पूरा डिनर खा सकता था।

जहाँ देवादिदेव शराब पीता, वहीं जो होना खा लेता। शायद पीने से पहले वह काफ़ी मक्खन खा लेता था। उसका नतीजा होता कि उस पर शराब का असर न होता। मजलिस खत्म होने पर देवादिदेव को घर लौटने में रात के एक-दो-ढाई बज जाते। नींद आते-आते सुबह हो जाती। उसके बाद जब वह उठता तब कॉफ़ी के अलावा कोई और चीज़ लेता तो तबीयत मिचलाती।

उस समय अभागे कलकत्ता में देवादिदेव को अपनी जान का डर था। उग्रपंथियों के कामकाज भी उग्र रहते हैं। कैसी ताज्जुब की बात है कि उसके घर पर ही नक्सलवादियों को भूलकर बांगलादेश पर लिखने के बारे में टेलीफ़ोन आया ! पहली बात कैसी सत्यानासी थी ! 'आपको ख़त्म क्यों नहीं कर दिया गया, बता सकते हैं ?' नहीं, नहीं, उनका फ़ोन नहीं है। देवादिदेव तो सर्वत्र विराजमान टमाटर है—शोरबे में, झोल में, चटनी में। देवादिदेव उनका भी दोस्त है। यह फ़ोन उनका नहीं है ? वह फ़ोन जरूर किसी अभागे ईर्ष्या करने वाले ने किया है। जो भी हो, इस उम्र में इस तरह का फ़ोन आने पर होशियार होना ही पड़ता है। देवकी बनर्जी को इस बारे में बताया। देवकी बनर्जी कौन-क्या-क्यों-कब-कहाँ है, देवादि-देव से अच्छी तरह जानता था। लेकिन जिस मजलिस में तुम जाते हो, वहाँ अगर रोज उससे मुलाक़ात हो तो। वह बग़ल में व्हिस्की दबाये, ऊँचे स्वर में एवतुशेंको की कविता पढ़ता हुआ मिलता। जितनी देर मजलिस में रहता, उच्छ्वसित आवाज़ में नक्सलवादी लड़कों के बारे में कविता सुनाता। वही पश्चिमी बंगाल के ख़तरा और समाप्त करना (ए० ए० आई०) और खोजकर नष्ट कर दो (एस० ए० डी०) जैसी जरूरी गड़बड़ों की धुरी है। यह धारणा दिमाग़ में कहीं पीछे-पीछे चलती रहती थी। वही भरोसे के लायक़ लगता था। उसी से फ़ोन पर आये संदेश की बात कह देते हो। नतीजा यह होता है कि दूसरे दिन तुम्हें नींद से जगाकर कहता है, 'सुबह-सुबह उठा करो, देव ! मैंने कल रात एक बजे तक शराब पी, लेकिन फिर भी पांच बजे उठ गया हूँ। कच्चे चने खाये, यौगिक व्यायाम किया। अपने दोस्त और पहरेदार रोवर को यानी अपने अल्सेशियन को लेकर लेक तक दौड़ा, घर लौटा। अब छह बजकर दस हो रहे हैं। सुनो, फ़ोन पब्लिक-बूथ से किया गया था। इसी से उसका पता न चला। तुमको प्रोटेक्शन दे दिया गया है। रात के समय हमेशा दो आदमी तुम्हारे साथ रहेंगे, पीछे-पीछे चलेंगे। नहीं, कोई आपत्ति नहीं। तुम मूल्यवान व्यक्ति हो। तुम्हारे पांव में कांटा चुभने पर विपुल मुझे क्या सही सलामत छोड़ देगा ?'

देवादिदेव दोनों आदमियों के कारण कैसी मुसीबत में पड़ गया है—उनकी शक्लों पर ही डिटेक्टिव लिखा है। देखते ही थप्पड़ मारने को

तबीयत होती है। लेकिन यह इच्छा भी खतरनाक है। चूँकि सरकारी तौर पर देश में कहीं भी हिंसा न थी, चूँकि 'हिंसा' शब्द नक्सलियों का पड़ा हुआ था, इसलिए ये सारे मछलीखोर संग्रहणी-ग्रस्त भेदिये अहिंसक मौका पाते ही इनसानी टार्गेट पर दनादन गोली चला देते हैं। दो दिन बीतते ही देवादिदेव ने देवकी बनर्जी से कहा, 'मेरी गरदन पर से इन्हें हटाओ।'

—घर पर पुलिस लगा दूँ?

—नहीं, कुछ नहीं चाहिए।

—देखता हूँ।

'देखता हूँ' कहकर देवकी नक्सल संबंधी गोपनीय सम्मेलन में दिल्ली चले गये और इसीलिए दोनों काँटे और कुछ दिनों तक देवादिदेव के पीछे कुत्ते की चीचड़ी की तरह चिपके रहे। देवकी दिल्ली से ही हरिद्वार चले गये और परमपिता देवर्षि के जन्मोत्सव में सम्मिलित हुए। शरारत के लिए उन्होंने देवर्षि का प्रसाद लाकर देवादिदेव को दिया। प्रसाद खाने योग्य नहीं, दो बार सूँघने लायक था। एक बार सूँघने में आधा और दो बार में पूरा समाप्त। दो बार पेड़ा सुँघाने के बाद उसी पेड़े से देवकी काक-भोजन कराता और कहता, 'ठीक है।'

इतना सब करने के बाद ही उन रक्षकों को गरदन से उतारा गया। लेकिन कलकत्ता बहुत रद्दी जगह है। ईप्सिता की एक बहुत दूर के रिश्ते की मौसेरी बहन सुन्दरी इमा थी। एक दिन वह अपनी बगल में स्पेनिश कुत्ता दबाये देवादिदेव के घर आकर कह गयी, 'हाऊ फनी! देव-दा पुलिस के पहरे में चलते हैं? सुनकर हँसी आ गयी। सबब भी अजीब मजेदार था। तुमने क्या किया है कि नक्सली तुम्हें मारेंगे? तुम्हारी किताबें पढ़ते हैं हम लोग। जिसकी किताबों के पाठक हजारों लड़के-लड़कियाँ हों, उसके लेखन में नक्सलियों का क्या बनता-बिगड़ता है?'

जो लड़कियाँ सुन्दर नहीं हैं, जिनके पास स्पेनिश कुत्ता नहीं है जिनके कानों में बाल और सिर पर फोड़े हैं, ऐसे लोग भी बातें बड़ जाते हैं। ऋत्विक ने एक दिन यह बात सुनकर अपनी स्वाभाविक जोरदार हँसी हँसते हुए कहा था, 'यह बात हुई, इस जमाने की सबसे मजेदार चीज।'

देवादिदेव को लगा था कि अब मंच से हट जाना ही अच्छा है।—

उस समय अभागे कलकत्ता में देवादिदेव को अपनी जान का डर था। उग्रपंथियों के कामकाज भी उग्र रहते हैं। कैसी ताज्जुब की बात है कि उसके घर पर ही नक्सलवादियों को भूलकर बांगलादेश पर लिखने के बारे में टेलीफ़ोन आया ! पहली बात कैसी सत्यानासी थी ! 'आपको खत्म क्यों नहीं कर दिया गया, बता सकते हैं ?' नहीं, नहीं, उनका फ़ोन नहीं है। देवादिदेव तो सर्वत्र विराजमान टमाटर है—शोरबे में, झोल में, चटनी में। देवादिदेव उनका भी दोस्त है। यह फ़ोन उनका नहीं है ? वह फ़ोन जरूर किसी अभागे ईर्ष्या करने वाले ने किया है। जो भी हो, इस उम्र में इस तरह का फ़ोन आने पर होशियार होना ही पड़ता है। देवकी बनर्जी को इस बारे में बताया। देवकी बनर्जी कौन-क्या-क्यों-कब-कहां-है, देवादिदेव से अच्छी तरह जानता था। लेकिन जिस मजलिस में तुम जाते हो, वहां अगर रोज उससे मुलाक़ात हो तो। वह बग़ल में व्हिस्की दबाये, ऊँचे स्वर में एवतुशेंको की कविता पढ़ता हुआ मिलता। जितनी देर मजलिस में रहता, उच्छ्वसित आवाज़ में नक्सलवादी लड़कों के बारे में कविता सुनाता। वही पश्चिमी बंगाल के ख़तरा और समाप्त करना (ए० ए० आई०) और खोजकर नष्ट कर दो (एस० ए० डी०) जैसी जरूरी गड़बड़ों की धुरी है। यह धारणा दिमाग़ में कहीं पीछे-पीछे चलती रहती थी। वही भरोसे के लायक़ लगता था। उसी से फ़ोन पर आये संदेश की बात कह देते हो। नतीजा यह होता है कि दूसरे दिन तुम्हें नींद से जगाकर कहता है, 'सुबह-सुबह उठा करो, देव ! मैंने कल रात एक बजे तक शराब पी, लेकिन फिर भी पांच बजे उठ गया हूँ। कच्चे चने खाये, यौगिक व्यायाम किया। अपने दोस्त और पहरेदार रोवर को यानी अपने अल्सेशियन को लेकर लेक तक दौड़ा, घर लौटा। अब छह बजकर दस हो रहे हैं। सुनो, फ़ोन पब्लिक-बूथ से किया गया था। इसी से उसका पता न चला। तुमको प्रोटेक्शन दे दिया गया है। रात के समय हमेशा दो आदमी तुम्हारे साथ रहेंगे, पीछे-पीछे चलेंगे। नहीं, कोई आपत्ति नहीं। तुम मूल्यवान व्यक्ति हो। तुम्हारे पांव में कांटा चुभने पर विपुल मुझे क्या सही सलामत छोड़ देगा ?'

देवादिदेव दोनों आदमियों के कारण कैसी मुसीबत में पड़ गया है—उनकी शक्लों पर ही डिटेक्टिव लिखा है। देखते ही थप्पड़ मारने की

तबीयत होनी है। लेकिन यह इच्छा भी खतरनाक है। चूंकि सरकारी तौर पर देश में कहीं भी हिंसा न थी, चूंकि 'हिंसा' शब्द नक्सलियों का घड़ा हुआ था, इसलिए ये सारे मछलीखोर संग्रहणी-ग्रस्त भेदिये अहिंसक मौका पाते ही इनसानी टार्गेट पर दनादन गोली चला देते हैं। दो दिन बीतते ही देवादिदेव ने देवकी बनर्जी से कहा, 'मेरी गरदन पर से इन्हें हटाओ।'

—घर पर पुलिस लगा दूं?

—नहीं, कुछ नहीं चाहिए।

—देखता हूं।

'देखता हूं' कहकर देवकी नक्सल संबंधी गोपनीय सम्मेलन में दिल्ली चले गये और इसीलिए दोनों कांटे और कुछ दिनों तक देवादिदेव के पीछे कुत्ते की चीचड़ी की तरह चिपके रहे। देवकी दिल्ली से ही हरिद्वार चले गये और परमपिता देवर्षि के जन्मोत्सव में सम्मिलित हुए। शरारत के लिए उन्होंने देवर्षि का प्रसाद लाकर देवादिदेव को दिया। प्रसाद खाने योग्य नहीं, दो बार सूंघने लायक था। एक बार सूंघने में आधा और दो बार में पूरा समाप्त। दो बार पेड़ा सुंघाने के बाद उसी पेड़े से देवकी काक-भोजन कराता और कहता, 'ठीक है।'

इतना सब करने के बाद ही उन रक्षकों को गरदन से उतारा गया। लेकिन कलकत्ता बहुत रही जगह है। ईप्सिता की एक बहुत दूर के रिश्ते की मौसेरी बहन सुन्दरी इला थी। एक दिन वह अपनी बगल में स्पेनिश कुत्ता दबाये देवादिदेव के घर आकर कह गयी, 'हाऊ फनी ! देव-दा पुलिस के पहरे में चलते हैं ? सुनकर हँसी आ गयी। सबब भी अजीब मजेदार था। तुमने क्या किया है कि नक्सली तुम्हें मारेंगे ? तुम्हारी किताबें पढ़ते हैं हम लोग। जिसकी किताबों के पाठक हजारों लड़के-लड़कियां हों, उसके लेखन से नक्सलियों का क्या बनता-बिगड़ता है ?'

जो लड़कियां सुन्दर नहीं हैं, जिनके पास स्पेनिश कुत्ता नहीं है जिनके कानों में बाल और सिर पर फोड़े हैं, ऐसे लोग भी बातें कह जाते हैं ! ऋत्विक ने एक दिन यह बात सुनकर अपनी स्वाभाविक जोरदार हँसी हँसते हुए कहा था, 'यह बात हुई, इस जमाने की सबसे मजेदार चीज।'

देवादिदेव को लगा था कि अब मंच से हट जाना ही अच्छा है। और

वह झट-से उड़कर बुद्धिजीवियों के सम्मेलन में किसी परिचित के पास विदेश चला गया। उसके वापस आते-आते कलकत्ता में बहुत-से नामी और क़ीमती सिर धड़ से अलग हो गये थे, जिसका नतीजा यह हुआ कि उसकी प्रोटेक्शन लेने की बात सब भूल गये।

तब की प्रोटेक्शन में चलने की बात अभागा पांचजन्य आजकल चारों ओर खूब कहता फिरता है। अभागा कहीं का! उस वक़्त अगर पांचजन्य ज़रा भी गड़बड़ करता तो देवादिदेव उसे मीसा में तुरन्त धरवा देता। वह दिन अब नहीं है भाई, वे दिन अब नहीं रहे। वह मीसा, वह आपातकालीन स्थिति सभी हैं। लेकिन पांचजन्य इस समय सर्वशक्तिमान वृद्ध की नेक नज़रों में है। वृद्ध पांचजन्य की प्रशंसा करने को क्यों उत्सुक है? यह भी उस विश्वशिशु का विराट खेल है। देवादिदेव ही को प्राथमिकता क्यों? लेकिन किस कारण से उसे गिराकर पांचजन्य को उठाया जायेगा? मदद-गार जानकर ही पांचजन्य गरम चीज़ें लिखता है। इमर्जेंसी चल रही है, चले। इमर्जेंसी के विरुद्ध लिखने पर तो व्यक्तियों को मीसा में बंद कर दिया जायेगा। लेकिन एक को बचाकर रखा जायेगा। ताकि सिद्ध होगा कि इमर्जेंसी दूसरे कारणों से लगायी गयी है, उससे प्रजातंत्र का गला नहीं घोंटा गया। उसका प्रमाण है कि पांचजन्य जेल में नहीं है, बाहर है। अगर उसे मीसा में बंद कर दिया जाये तो पांचजन्य का स्वार्थ सबसे अधिक सिद्ध होगा। देवादिदेव जानता है कि पांचजन्य को मीसा में बंद करने पर उसे यथासाध्य सुख और स्वच्छंदता के साथ जेल में रखा जायेगा। ऐसा किसी-किसी के साथ हुआ भी है। अंत में प्रमाण मिलेगा कि व्यवस्था ने देवादिदेव को अपने से अलग कर दिया है। अब पांचजन्य ही उसका चुना हुआ सदस्य है। जो कभी जेल गया था, वह नहीं। वह आपातकाल में सरकार के विरुद्ध लिखकर जेल गया था। उसकी ईमानदारी और सरकार के विरोध के प्रमाण मौजूद हैं। जेल से निकलने के बाद पांचजन्य ही नायक बना है। यह तब तक है, जब तक कि कोई और वृद्ध या प्रौढ़ या युवक अपनी सरकार चलाने के लिए पांचजन्य को हटाकर क-ख-ग को ऊपर न उठाये। सरकार का लक्ष्य सरकार-विरोधी बुद्धिजीवी ही होते हैं।

लेकिन देवादिदेव के विफल होने पर ही तो पांचजन्य ऊपर उठेगा।

देवादिदेव विफल क्यों होगा ? पांचजन्य के बारे में सोचने पर थोड़ा डर जरूर लगता है, लेकिन वह उम्र का दोष है। वय का, डायबिटीज, ऐसिडिटी का दोष है। असल में डरने की कोई बात नहीं है। वृद्ध का रुख देखकर लगता है कि देवादिदेव को उन्होंने ही बताया है। कैसे बताया ? देवादिदेव क्या उन्हीं के लिए बैठा था ? वह जब नहीं थे, जब वह अपनी बस्ती में किसानों को चरखा चलाना सिखा रहे थे, उस समय भी देवादिदेव लिख रहा था। वृद्ध की बातें बहुत आपत्तिजनक थीं। हेमाद्रिराजन ! हेमाद्रिराजन न होता तो क्या होता ? देवादिदेव भी जनता का आदमी है।

पांचजन्य और देवादिदेव। देवादिदेव का अपना एक अतीत है, वैसा अतीत पांचजन्य का कहां है ? देवादिदेव को कितनी सुविधाएँ थीं ! तैंतालीस साल से वह कम्युनिस्ट फ्रंट का समर्थक है।

पहले वह 'बंगाल के किसान' पत्र का प्रत्यक्ष संवाददाता था। अखबार का प्रतिनिधि बनने का उस समय तीस रुपये महीना मिलता था। उसी वक्त देवादिदेव खूब घूमा था। कहाँ-कहाँ नहीं गया ? कभी चटगांव, कभी बरीसाल, कभी हाजंग इलाका, कभी जलपाईगुड़ी-बर्दवान-मेदिनीपुर-बांकुड़ा-बीरभूम—सभी जगह घूमा है। पुरानी फ़िल्मों के बारे में जिस तरह मोह रहता है, उन दिनों के लिए देवादिदेव के मन में भी उसी तरह का मोह है। बीरभूम के एक गांव में एक किसान औरत ने उसे बैसाख की धूप में बाहर नहीं निकलने दिया था। महजन के डंठल की सब्जी और दाल के साथ लाल चावल का भात सामने रखकर बोली थी, 'जाड़ों में आइयेगा, उस समय खाने की चीजें मिलती हैं।'

पबना के किसी गांव में जबहन धान काटने के मामले में वह मुसलमान किसानों की लड़ाई के बीच पहुंच गया था। कैसा दंगा हुआ था ! दोनों दल हाथों में बर्छे लेकर धान-कटाई के समारोह में उतर पड़े थे, पद्मा के जल में लाशों-पर-लाशें तैर रही थीं।

ऐसी बहुत-सी बातें और भी हुई थीं। खुलना में नारियल के तेल में तली पूरी और भांगन मछली खायी थी। जिस घर में ठहरा था, उनके पास नारियल के हजार पेड़ थे। भिखारी साधु के आने पर भिक्षा में नारियल दिया जाता था। 'बंगाल के किसान' अखबार में काम करते-

करते देवादिदेव कृषक आंदोलन से जुड़ गया था। वर्दवान के गाँव में कृषक-समिति बनाने के प्रयत्न में पहली बार जेल गया था। जेल में ही साम्यवाद के प्रति आस्था, अनुराग उत्पन्न हुआ था और तभी से वह उसका अनुगत हुआ। अनुगत होने की जड़ें बहुत गहरी हो सकती हैं। आँखों से जो ऊपर-ऊपर देखते हो, मन उसे अलग एक तरफ़ रख सकता है। इसीलिए वयालीस के आंदोलन ने मन को छुआ तक नहीं। तेंतालीस में देवादिदेव तैयार हो गया था। तेंतालीस का वर्ष उसके जीवन के प्रारंभ का द्योतक था। एक मन्वन्तर था।

स्वप्न ! लगता कि सब स्वप्न है। कलकत्ता की हर सड़क पर लाशें। कालीघाट के ट्राम डिपो में देखा था कि मृत माँ के नंगे कंकाल की छाती में बच्चा दूध तलाश कर रहा है। जैनुल आब्दीन का चित्र—मरी लड़की का शरीर पड़ा है, हरसिंगार के पेड़ से फूल झर रहे हैं। नीचे लिखा है, 'उसके बाद भी आया शरद। मन्वन्तर।' काले बाजार से पैदा हुआ काला धन, जिसके फटकर बरसने से अचानक बना धनी...नगर की राहों पर गाँव के लोग मरे पड़े हैं। सवेरे लारियों में लकड़ी की तरह कठोर पड़ गये शवों को उठाया जा रहा है। ठक-ठक-ठक बेजान आवाजें हो रही हैं। वे लाशें कहाँ जलायी जाती थीं ? उस दौरान दो-तीन बरस में एक के बाद एक कई नाटक हुए—'आग', 'ज़बानबन्दी', 'लैबरेटरी'। सबके बाद सब से ऊँची लहर बनकर आया 'नवान्न'। उस एक नाटक ने इस महानगर में जो तूफ़ान खड़ा कर दिया था, वह आज भी याद है। अब तो सब-कुछ सपना हो गया है। बंगाल में मनुष्य द्वारा उत्पन्न किये गये दुर्भिक्ष की सहायता के लिए भारत के हर प्रदेश में आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया हुई थी। भूखा है बंगाल !

उन दिनों के गीतों में कितने बंधन टूट गये थे ! मृत्यु के सिरहाने मंत्रणा करके किस तरह जीवित रहा जायेगा ? 'नवान्न' में नाविकों का गान, 'ओ हुसेन भाई, दामुकदिया चाचा'। उस समय के गीत ऐसे थे—'अब कमर बांधकर तैयार हो जाओ', 'जागो, जागो, जागो सर्वहारा।' सबको लग रहा था कि क्रांति आ गयी है। इतने दशक बीत जाने पर भी वह विश्वास नहीं जाता। देवादिदेव जानता है, इस दशक के विश्वास

से, क्षितिज के रक्तसूर्य की प्रथम रश्मि से आंध्र तट सबसे पहले रंजित हुआ था। उस विस्फोट के बाद भी क्रांति नहीं आती है। इस देश में क्रांति क्यों नहीं आती है? कहाँ कौन-सी कमी रह जाती है! उन्हीं दिनों देवादिदेव की मुलाकात सुकान्त से हुई थी। खूब चमकती आँखें थीं, विनम्र किशोर था वह। हँसता तो चेहरा प्रकाश से भर उठता था।

संस्कृति-फ्रंट। साहित्य-फ्रंट। तभी देवादिदेव रिपोर्ट लिखना छोड़कर कहानियों के क्षेत्र में उतरा था। उसकी पहली कहानी 'भूख' को आज भी हर कथा-संकलन में स्थान मिलता है। वह कहानी चुनौती के साथ लिखी गयी थी। साहस उसमें सदा से था। पार्टी के समाचारपत्र में शशि सांतरा सहकर्मी थे। वह शशि से कहता, 'दुर्भिक्ष पर जो लिखा जा रहा है, वैसा कुछ हो नहीं रहा है।'

'भई, आलोचना से क्या लाभ? कुछ लिखकर दिखाओ न! कहानी लिखो। कहानी होगी, पढ़ने में अच्छी लगेगी। रिपोर्ताज तो न होगी।'

उस समय देवादिदेव ने यह नहीं सोचा था कि वह एक नयी कहानी लिख सकेगा। किन्तु लिख डाली। कहानी जब छपी गयी तो माणिक बंद्योपाध्याय ने स्वयं उसकी प्रशंसा की थी। देवादिदेव को लगा कि माणिक बाबू का सहारा पाकर वह धन्य हो गया है।

माणिक बाबू ने कहा था, 'तुम लिखा करो।'

—लिखूँ?

—लिखो।

तब उसने एक के बाद एक कई कहानियाँ लिखीं—'भूख', 'किसे कठघरे में ले आये हो?', 'आगामी'। प्रत्येक कहानी हीरे-सी चमकदार, गर्मजोशी से खून से भरी। उसके बाद उसका पहला उपन्यास आया 'आर्त शताब्दी'। ताराशंकर बंद्योपाध्याय ने उसे घर में बुलवा भेजा। बोले, 'बड़ा अच्छा लिख रहे हो भाई, मन बहुत खुश हुआ।' उस समय के सभी बुज़ुर्ग साहित्यिकों ने उसका अभिनंदन किया था।

देवादिदेव कथा-साहित्य में अकेला है, नयों में। और कोई नहीं है। नया होने पर भी सारे प्रतिष्ठित पत्रों का रविवासरीय पृष्ठ उसकी कहानी के बिना पूरा न होता था।

पार्क में लोगों के बीच वह कहानी पढ़ता। कहानी की हर पंक्ति पर श्रोता नारे लगाते । अचानक स्मृति के कुहासे से बुजुर्ग तलापात्र उछल पड़े। दुबला-पतला शरीर, धूप से तांबे की तरह लाल गोरा रंग। ललछौंहे बालों के साथ उनका मुख बहुत अच्छा लगता । बाल माथे पर आ जाते। बुजुर्ग चिल्लाकर बोले, 'बंधुगण ! देव की 'एक और छिअत्तर' कहानी के बाद मैं एक गीत पेश कर सकता हूँ।

गान होय, गान ।
आप भी मेरे साथ गायें गान ।
गान होय, गान !
'जागो जाऽऽ गो जागो सर्वहाऽऽऽरा !'

गीत के बहाव मे जनता उछली पड़ रही थी। गायक, श्रोता—सभी को लग रहा था कि परिवर्तन का समय आ गया है, अब देर नहीं है। उस समय बुजुर्ग पार्क में बैठकर देव को सुनाते, 'उस झंझा के झकोरे-झकोरे में'। किसे पता था कि वही बुजुर्ग तलापात्र और शशि सांतरा एक दशक बाद नक्सली बन जायेंगे, उसी सिलसिले में आमने-सामने की मुठभेड़ में मारे जायेंगे। शशि की मां नब्बे बरस की होकर भी जीवित है। उसके दिमाग में शशि की मौत की खबर के अलावा अब कुछ नहीं है। उसके बाद की कोई घटना उसके दिमाग में घुसती ही नहीं। दिन-भर एक ही बात कहती रहती है : 'सुना है, मेरे शशि को मार डाला है ?'

एक ही वाक्य को दिन-भर में लाखों बार कहती रहती है। अकेले ही बोलती रहती है। शशि की पत्नी अब भी टेंगरा के एक स्कूल में पढ़ाने जाती है, लड़का बर्दवान में रहता है। नौकरानी के सिवाय बुढ़िया की बात कोई नहीं सुनता।

उज्ज्वल, अतीत उज्ज्वल था । उसे बनाना आसान था। पांचजन्य को किस तर्ज पर बनाया जायेगा ? सेंट जेवियर्स का लड़का, अंग्रेजी में ही लिखता था। देवादिदेव ने ही जबरदस्ती उससे बंगला में लिखने को कहा। लड़के में योग्यता कम नहीं है। अंग्रेजी और बंगला, दोनों ही भाषाओं में जोरों से चल रहा है। शक्ल अजीब है, आजकल के लड़कों की तरह। लंबे और घुंघराले बाल हैं, भद्दा-सा रंगीन कुर्ता है, बेलबाट

भी रंगीन है, कमर में तरह-तरह के रंगों की तिरछी पेटी बँधी हुई है, पाँवों में बहुत कीमती जूते, लड़कियों का-सा साफ़ रंग। इस शक्ल पर प्रशासन के पसन्द की इमेज नहीं बनती।

देवादिदेव की शक्ल कैसी है ? उसकी इमेज बनाने में शक्ल का भी योगदान रहा है। लगता साढ़े छह फ़ीट का है, पर है छह फ़ीट तीन इंच का, चमकदार काला रंग, कटे हुए बाल, तीखी नाक, तेज़ आँखें, घनी भौंहें, कपाल और ठोडी जगनियों-सी, मुँह का भाव रूखा और पथरीला, आवाज़ भारी। बलवंत उसकी शक्ल देखते ही उसका भक्त हो गया था।

अचानक देवादिदेव के मन में भूकंप-सा मच गया। उस अफ़सर छोकरे की गरदन देखकर उसे बलवंत की याद आयी थी। बलवंत गोस्त ! बलवंत की याद कटी पतंग की डोर की तरह उसके हाथों के पास गोता खाये जा रही थी। देवादिदेव डोर का सिरा पकड़ नहीं पा रहा था। अचानक उसने उसे पकड़ लिया . बचपन, गाँव का घर, पास के घर में पल्टू के साथ मिलकर काँच से सूते माँझे की डोर के लिए खींचातानी करने में दोनों के हाथ कट गये थे। कितना खून, ढेरों खून बहा था ! पल्टू की माँ ने चूना लगाकर दोनों के हाथों की मरहम-पट्टी की थी। उन दिनों टिटेनस के इंजेक्शन का इतना शोर न था। कट-फट जाने पर दूब या गेंदे के पत्तों को पीसकर उसका रस लगा देने से ही काम चल जाता था। अब तो चारों ओर की हवा दूषित है। बात-बात में इंजेक्शन के बिना बाल-बच्चों का काम नहीं चलता।

बलवंत कहता, 'दादा आप लेखक बनेंगे।'

—क्यों ?

—आपकी शक्ल ही ऐसी है।

—धत् ! शक्ल से क्या होता है !

—शक्ल, नाम, सब चीज़ों की ज़रूरत होती है, दादा !

लेखक बनेगा, क्या यह वह जानता था ?

बनना ही होगा।

उन दिनों देवादिदेव ने मजलिस जमायी ही थी। किन्तु उम्र में छोटे एक गुणी लड़के के मुग्ध चेहरे की तसवीर बड़ी अच्छी लगती थी।

आत्म-विश्वास भी था कि अच्छा लिखता हूँ। उसके साथ एक बात और भी थी। देवादिदेव को लेखन की स्वीकृति पाने के लिए कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा था। कम्युनिस्ट पार्टी से स्वीकृति पाने के बाद उसके लिए एक बड़ा शिक्षित समाज कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव में पहले से मौजूद था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे एक बना-बनाया उत्साही पाठक-वर्ग मिल गया था। उस समय बुजुर्ग लेखकों में नये प्रतिभावान लेखक का गला दबा देने की हिंस्र मानसिकता नहीं थी। वे उसे प्रोत्साहित करते, प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में भी उसकी रचनाएँ छपतीं। इससे वह पुराने पाठकों के पास भी पहुँच गया। यदि बलवंत की प्रशंसा उसे अच्छी लगती थी तो इसमें ताज्जुब की क्या बात थी?

फ़ासिज्म-विरोधी एक साहित्यिक सभा में उसका 'आर्त शताब्दी' उपन्यास देकर एक लड़के ने कहा था, 'हस्ताक्षर कर दें।'

—तुम कौन हो, भाई?

—पार्टी का एक होल-टाइमर।

—नाम?

—बलवंत लाल।

—लाल?

—बिहारी हूँ। लेकिन बँगला पढ़ता हूँ, समझता हूँ।

—वाह, बातचीत में कोई फ़र्क नहीं है!

—वह कैसे रहता? कलकत्ता में हमारी तीन पीढ़ी रही हैं।

तभी शशि सांतरा ने कहा, 'इसे पहचानते नहीं? ट्राम मजदूर यूनियन के कार्यकर्ता दशरथ लाल का बेटा है। उसके दादा ने घोड़े वाली ट्राम चलायी थी, बाप इस ट्राम को चलाता है, बेटा बन गया कम्युनिस्ट पार्टी के होल-टाइमर। उसका दूसरा परिचय भी मालूम है?'

—क्या?

—हिन्दी में कहानियाँ लिखता है। 'नभ में पताका' कहानी इसी की लिखी हुई है। बहुत अच्छी कहानी है। 'नभ में पताका नाचत है' गीत सुनकर लिखी है।

—वाह! सुनने में ही अच्छा लग रहा है।

—बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं।

—बलवत, किसी दिन मेरे घर आओ।

—आऊँगा।

वहीं बातचीत हुई। फिर उसके बाद बहुत समय तक भेंट न हुई। देवादिदेव उसे भूल ही गया था। एक दिन घर लौट रहा था कि सहसा सुनायी दिया कि कोई उसे आवाज़ दे रहा है, 'दादा! ओ दादा!' पीछे घूमकर देखा तो बलवत।

—क्या बात है? आये नहीं?

—आया तो हूँ। अभी तक कुष्ठखाने में पड़ा हुआ था। वहाँ कितने लोग रहते हैं, इसका पता ही न था। उन पर रिपोर्ताज लिखा है। उनके बहुत-से चित्र खींचे हैं।

—तुम तसवीर भी खींचते हो?

—हाँ दादा! चित्त प्रसाद-दा ने तसवीरें देखकर मेरा बहुत उत्साह बढ़ाया था। कहता था, मेरा हाथ तसवीरों का हाथ है।

—बड़ा अच्छा सर्टिफिकेट पा गये हो।

—काश! चित्त प्रसाद-दा की-सी एक भी तसवीर बना पाता!

—क्या सभी चित्त प्रसाद हो जाते हैं?

देवादिदेव ने बात बड़े ऊँचे होकर कही थी। बाद में बलवत की खींची तसवीरें देखकर वह चौंक पड़ा। उसे लगा कि तसवीरें खींचता रहा तो बलवत निश्चय ही बहुत दूर तक जायेगा। अच्छा लिखता है, अच्छी तसवीर खींचता है। मन में एक जलन-सी भी पैदा हुई। असली कम्युनिस्ट हमेशा अपना आलोचक बना रहता है। इसलिए मन का भाव ईर्ष्या है या और कुछ, देवादिदेव बलवत के साथ चलते-चलते यही सोच रहा था। सोचते-सोचते ही दोनों देवादिदेव के घर पहुँच गये। घर में घुसते ही बलवत को अजीब-सा असमंजस महसूस हो रहा था। बहुत मामूली, किन्तु ढंग से सजी बैठक थी। ईप्सिता को शादी में कई विदेशी कलाकारों के चित्रों के प्रिंट मिले थे। वही चौखटों में जड़े दीवार पर लटक रहे थे। फूल थे। कमरे में फूल रखना उन दिनों बहुत बुर्जुआ बात समझी जाती थी। फूल, रवीन्द्रनाथ आदि का अच्छा लगना, ज़रा सज-सँवरकर

सी बातें देखकर पार्टी के लोगों की आँखें तार पर चढ़ जाती थीं।
फूल देखकर, ईप्सिता को देखकर बलवंत पर कोई प्रतिकूल असर
हो। ईप्सिता के चेहरे पर 'लड़कर अधिकार लेंगे' जैसी धमकी का
न था। वह बहुत साफ़ क़िस्म की थी, उसका चेहरा देखते ही पता
जाता था। साफ़ गोरा रंग, सुडौल नाक, बड़ी-बड़ी आँखें। फ़ैशन
ीं, आभिजात्य है।

—ईप्सिता, यह बलवंत है।

—नमस्कार भाभी!

—नमस्कार। तुम लोग बैठो।

—ज़रा चाय...?

—हाँ, भेज रही हूँ।

ईप्सिता ने साफ़ वस्त्र से ढँकी एक ट्रे में चाय, तला हुआ चिवड़ा, नमकीन भेज दिया। देखकर बलवंत और भी असमंजस में पड़ गया। मैले हाथों से उसने प्लेट में चाय उँडेलकर सुड़क-सुड़ककर पीने लगा। ढेर-सा चिवड़ा उठा लिया।

—दादा, मकान आपका अपना है?

—नहीं, किराये का है।

—बहुत बड़ा है।

—अरे, मामूली-सा किराया है।

—कितना?

—पचास रुपये।

—पचाऽऽस रुपये! कितने कमरे हैं?

—छह।

—दादा, हैसियत से बाहर नहीं जाना चाहिए। छोटा परिवार
छोटे मकान में चले जाइये।

—क्या इससे छोटा मकान आज पचास रुपये में मिलेगा?

—नहीं मिलेगा? क्या कह रहे हैं? बस्ती के पास अभी भी
रुपये में मकान मिलते हैं। बहुत-से लोग रहते हैं।

तब देवाशिष ने सारी बात अपने पिता पर टाल दी। कहा

मकान की बात कह रहे हो ?

-मकान है, फिर अपने-आपको भी तो आपने दे ही दिया है।

—जब तक बाबा हैं, तब तक मकान का कुछ नहीं किया जा सकता।

—वह तो है ही।

—यही तो सारा झंझट है।

—अच्छा, दादा ?

—कहो।

—एक बात कहूँ, बुरा मत मानियेगा।

—कहो न।

—क्या यह बात सच है कि भाभी क़तई ग़ैर-राजनैतिक हैं ?

—हाँ।

—भाभी से ब्याह करने से पहले क्या आपसे नहीं कहा गया था कि आप एकदम ग़ैर-राजनैतिक लड़की से क्यों शादी कर रहे हैं ?

—कहा गया था।

—फिर क्यों की ?

देवादिदेव बहुत चिढ़ गया था, फिर भी शुभ्र मुसकान के साथ बोला था—'प्यार अंधा होता है, भाई ! प्यार के आगे कुछ नहीं चलता'

—निश्चय ही।

लेकिन असल मामला यों क्षण-भर में नहीं सुलझ गया था। बाक़ायदा विचार-समिति की बैठक हुई थी और देवादिदेव को बताना पड़ा था कि उसने ईप्सिता से शादी क्यों की ? डॉक्टर अशोक पार्टी के विश्वासपात्र थे। वह ईप्सिता को पहचानते थे। ईप्सिता अवकाश-प्राप्त सिविलसर्जन की लड़की थी। अशोक ही देवादिदेव को उस घर में ले गया था। यहाँ तक पार्टी ठीक-ठीक समझती रही थी। लेकिन उस घर की लड़की से 'शादी शुद्ध शादी ? क्यों ? ललिता ने क्या क़सूर किया था ? सभी का यही ख़या था कि देवादिदेव की शादी ललिता से होगी। पार्टी का आदमी, पार्टी लड़की के साथ क्यों नहीं शादी करेगा ? पार्टी के लड़के पार्टी की लड़ से शादी करेंगे, उनके वंशधर भी पार्टी के आदमी होंगे...आदि-आदि

देवादिदेव ने कहा था कि 'पार्टी की लड़की से शादी करने

फ़ायदा ? ईप्सिता अच्छी सामग्री है। उसका हृदय-परिवर्तन करने पर मुझे बहुत खुशी होगी। इनकी भी ज्यादा जरूरत है।'

शशि सोंतरा ने कहा था, 'हम ही अच्छे हैं। शादी किये बहुत दिन हो गये। पत्नी पार्टी को नहीं जानती, पति को जानती है। पति अगर पार्टी का काम करता है, तो पार्टी निश्चय ही अच्छी चीज़ है; उसका ऐसा विश्वास है।'

चन्द्रनाथ मौलिक ने ठंडी साँस लेकर कहा था, 'तुम ही ठीक हो। मेरी पत्नी इतना सब-कुछ नहीं समझती। उस दिन पूछ रही थी—पार्टी का काम करत हो तो का मिलत है ? फटा जूता पहने काहे घूमत हो ? तुमरी पार्टी मा वेतन नाही बढ़त है क्या ?'

मोहन-दा समझदार बुज़ुर्ग आदमी हैं। बोले, 'कामरेड, समझा-बुझाकर पत्नी के मन में पार्टी के प्रति सहानुभूति पैदा करना ही उचित रहेगा।'

चन्द्रनाथ ने कहा, 'सहानुभूति सन का होई ? ले हीं बनावै उही की। पोस्टर साटै क जिस्ता लेही चहे, उही बनाय देई। ना न कही।'

मोहन-दा जोशीले आदमी थे। बोले, 'यह भी तो एक तरह की सहानुभूति है। हमारी बहनों के ये सब काम क्या कम क़ीमती हैं ?'

अंत में देवादिदेव की शादी को स्वीकृति प्रदान कर दी गयी। कलाकार-साहित्यकारों को पार्टी उस समय बहुत स्नेह की नज़रों से देखती थी।

बलवंत के साथ बातें करते हुए यही सारी बातें उसे बार-बार याद आ रही थीं। सभी बातें। लेकिन बलवंत क्या सोही छोड़ने वाला था !

—दादा, एक बात और बतायेंगे ?

—कहो।

—हम सभी पार्टी के वर्कर हैं, कार्यकर्ता हैं, हम सभी बराबर हैं। और मैं तो सबसे बड़े घर का बेटा हूँ—मज़दूर का बेटा। फिर भी शरीफ़ कामरेडों के घर आने पर शरम लगती है। क्यों ?

—दूर हो जायेगी, बलवंत ! कामरेड कामरेड ही हैं। कामरेड-कामरेड में कोई फ़र्क नहीं। इस पर तुम्हें विश्वास करना ही पड़ेगा।

—दादा, वही विश्वास विश्वास होता है जो भीतर की जानकारी से,

नुभव मे आये। क्यों, सही है न ? बताइये।

—नहीं, बलवंत, यह थ्योरी, यह सिद्धान्त अब नहीं चलते।

आज देवादिदेव को लगता है कि बलवंत की बात ही सच थी। लेकिन यह भी सच है कि यह अनुभव होता है ढेरों गलतियाँ करने के बाद प्रौढ़ आयु तक पहुँचने पर, बुजुर्ग बनने पर। बलवंत उस समय कैसे यह बात कह सका था ? बलवंत को क्या पता था कि आयु उसके हाथ की चीज नहीं है ? इसीलिए वह बड़ी जल्दी-जल्दी जअनुभव बटोरता जा रहा है ?

—दादा, जब सभी कामरेड एक-से हैं तो क्या उन सबका जीवन एक-सा होना उचित नही है ? यह बात मुझे बहुत खटकती है।

देवादिदेव को हँसी आयी थी। राजाओं, जमींदारों, कलकत्ता के बड़े-बड़े पुराने रईस घरानों के लड़के आज पार्टी-कामरेड हैं। दिन-भर पार्टी का काम कर शरीर उसी घर में वापस जाना चाहता है जहाँ सुख, रोशनी-दार कमरा, मुलायम बिस्तर, सिल्क का पैजामा-सूट, मुलायम चप्पलें राह देख रही होती हैं। देवादिदेव राजा या जमींदार का बेटा नहीं है। लेकिन घर तो घर है। घर लौटने पर वह भी यही चाहता है कि सब-कुछ तुरन्त सामने हाजिर हो जाये, हाथों के पास चटपट। खाना, चाय, सभी कुछ।

—देखो बलवंत, इसमें कोई अंतर्विरोध नहीं है।

—किसमें ?

—हर आदमी अलग-अलग परिवेश से आता है। तुरंत परिवेश बदल जायें, ऐसा क्या तत्काल हो जायेगा ?

—बदलने से ही होगा।

—घर के लोग कैसे मानेंगे ?

—जो अपने घर के लोगों को पार्टी की बात नहीं समझा सकते, जो अपने घर के लोगों का मत-परिवर्तन नहीं कर सकते, वे समझा-बुझाक बाहरी लोगों का मत-परिवर्तन कैसे करेंगे ?

—देखो, मध्यम वर्ग के परिवारों के कामरेडों को देखकर ही तुम ऐस बातें कह रहे हो। मध्यम वर्ग का तो अपना कोई चरित्र ही नहीं है। मजदू और किसान सबसे अधिक मूल्यवान हैं। समझा-बुझाकर उनका मत-प वर्तन करने से ही पार्टी का काम आगे बढ़ाना ठीक रहता है।

—वे सही उद्देश्य, राष्ट्र वॉड, को खूब समझते हैं, दादा ! वे सब आंदोलनों में आगे नहीं रहे हैं, यह नहीं है ? नेता ही उन्हें धोखा देते हैं।

—तुम सब समझते हो ?

—ठीक है दादा, आपका मैं बहुत आदर करता हूँ। आप ही मुझे क्यों नहीं समझा देते ?

—अच्छा, बताता हूँ।

—कहिये।

—तुमको लगता है कि मध्यम वर्ग और उच्च-मध्यम वर्ग के कामरेड घर पर एक तरह का जीवन बिताते हैं और पार्टी में दूसरी तरह का। इन दोनों बातों में कहीं परस्पर विरोध है।

—हाँ दादा ! उस तरह का जीवन तो खतरे से बिल्कुल खाली होता है। लेकिन अब, इस समय कोई सच्चा कम्युनिस्ट क्या उतने में खाली रह सकता है ? उन्हें देखिये तो...।

—किसकी बात कह रहे हो ?

—दीपक-दा राजा आदमी हैं। अपना घर, जमीन-जायदाद, सब पार्टी को दे दिया। जब सब दे दिया तब उनका कुछ नहीं रहा न ? सुना है कि उनका बड़ा भारी मकान सानीपार्क में है। नौकर-चाकर, माली-दरबान...बड़ा कारोबार है। सो क्या सच है ? सब दे देने के बाद भी जो कुछ नहीं है, उसमें तो एक हजार गरीब कामरेडों को आराम से रखा जा सकता है !

देवादिदेव को अन्दर-ही-अन्दर बेचैनी हो रही थी।

—उसके बाद देखिये, बैरिस्टर कामरेडों की कारसाज़ियाँ। किसी के बाप ने मकान दिया है तो किसी के और रिश्तेदार ने. .।

—बलवत, सुनो...!

—कभी-कभी लगता है कि हम वर्गहीन समाज की सिर्फ बातें ही करते हैं। लेकिन ध्यान से देखने पर देखेंगे कि पार्टी में भी वर्ग-भेद आ गया है।

आज देवादिदेव को लगता है कि उस समय बलवत भविष्यद्रष्टा की तरह बोल रहा था। कम्युनिस्टों में उस समय भी वर्गभेद था। रईस दुलाल,

दीपक नन्दी, बैरिस्टर कामरेड बंकिम राय, सुधीन्द्र गुह—इन्हें कभी ऐसा कोई काम नहीं करना पड़ा जो पार्टी के पूरे वक़्त के कार्यकर्ताओं को बिना खाये-पिये मज़दूरों का सहारा लेकर करना पड़ा था। आंध्र का प्रशांत महेंद्र उत्तरी बंगाल के चायबाग़ान के मज़दूरों में काम करते हुए तपेदिक से मर गया। उसकी मृत्यु के बाद एक ग़लत पते की चिट्ठी प्रशांत के नाम आयी थी। प्रशांत की बुआ ने लिखा था, 'श्री चरणे निवेदनम् कम्युनिस्ट पार्टी संघम्। तिरुपति भागवत के आदेश से प्रार्थना करती हूँ कि बिना माँ के मेरे भतीजे प्रशांत अनंतम् महेंद्र को वापस भेज दो।'...ऐसे बहुत-से कामरेड संकट की हालत में लाचार मर गये, हमेशा के लिए समाप्त हो गये, और बड़े घर के कामरेड भिन्न रूपों में आज भी दिखायी पड़ रहे हैं। कौन बड़े घरों के बड़े-बड़े कामरेडों को बायें हाथ से दाहिने में लेता है, और दाहिने से बायें में, दाहिने से दाहिने में, लेकिन इन्हें बायें-से-बायें में नहीं देखा जाता। वहाँ और दूसरे कामरेडों का मजमा रहता है।

देवादिदेव को बलवंत की बातों से बहुत उलझन हो रही थी। उसने कहा, 'बलवंत, जनयुद्ध चल रहा है। इस युद्ध में फ़ासिस्ट शक्तियों का पतन होगा। इसलिए यह लड़ाई बहुत ही महत्वपूर्ण है।'

बलवत ने तब गुनगुनाकर गाया था, 'अंतिम युद्ध शुरू आज कामरेड।'

उसके बाद देवादिदेव ने कहा था, 'भारत क्या हमेशा ऐसा ही रहेगा? यहाँ भी समाजवादी क्रांति आयेगी। हम सभी उसके कारीगर हैं, बलवंत! यह समय क्रांति का स्तुति-पर्व है।'

—पता है, दादा...?

—पार्टी के होलटाइमरों को जो मजदूरी मिलती है इसमें सत्तू खाकर पार्टी-दफ़्तर की मेज पर ही सोया जा सकता है। कौन घर लौटकर आराम करता है? ऐसी सारी छोटी बातें सोचकर मन ख़राब मत करो। मैं कहता हूँ कि सोचने का यह तरीक़ा ठीक नहीं है।

—अच्छा, नहीं सोचूँगा।

बलवंत ने मुसकराकर जवाब दिया था। उसके बाद बोला था, 'पेशाब करूँगा, दादा!'

देवादिदेव ने उसे बाथरूम दिखा दिया। साफ़ बाथरूम देखकर बलवंत

ने कहा, 'न दादा, आदत नहीं है। मैं सड़क पर निबट लूंगा। ऐसे माफ़ बाथरूम में पेशाब करना बहुत ही ज्यादा बुर्जुआ काम है।'

आज कलुषहीन पहाड़ों की हरी घास पर लेटे, शरीर को डेजी फूलों को छूकर आयी हवा लग रही है। देवादिदेव ने दोनों हाथ ढीले छोड़ दिये और करवट ली। चेहरे को डेजी फूलों की पंखुड़ियाँ परस रही थीं, जैसे फूल उसमें कुछ कह रहे हों। शायद उनका यही संदेश हो कि जब तक यहाँ हो, हमारी तरह रहो। लेकिन देवादिदेव यह नहीं कर सकता कि फूलों की भीड़ में खो जाये, तरंगों के समान बर्फीले पहाड़ों में समा जाये। देवादिदेव को क्षमा करो। देवादिदेव कितना अभागा है कि फूलों से क्षमा माँग रहा है!

याद आया कि उस दिन ईप्सिता कह रही थी कि 'तुममें अंतर्विरोध है। तुम्हारी तरह तुम्हारा जीवन अंतर्विरोधी है।' लेकिन उस दिन देवादिदेव क्या कर सकता था? ईप्सिता के शब्दों से उस दिन उसने अपना विरोध अपने-आप किया था। मतु का गीत था 'महाजीवन का गान!' 'चलो मुक्ति पथ पर', मतु की यह गीत उसके अपने स्वर में कितना विचित्र लगता था! निरीह, विनीत, सभ्रांत। कौन कहेगा कि जमींदार का लड़का है! इस मतु के बारे में ही देवादिदेव आदि ने क्या ठीक निर्णय लिया था? उसे संगीत-निर्देशन के लिए सिनेमा में क्यों भेजा गया? कभी वह दिल्ली था, अब कलकत्ता में है। आँखों में और चेहरे पर बच्चों की-सी सरलता। खिली मुसकराहट। हमेशा वह एक जैसा ही बना रहा।

क्या देवादिदेव ही अंतर्विरोधों से ग्रस्त था? देवादिदेव के साथ के और भी तो साथी थे। 'साथी! साथी! कांधे से कांधा मिलाओ', गीत क्या कहता था? कभी जो साथी थे, उनमें से कितने ही आज समाज के स्तंभ हैं, विभिन्न संस्थाओं में सर्वोच्च पदों पर बैठे हैं। एक्जीक्यूटिव लोगों की पार्टी में सभी लोगों ने देवादिदेव के हर कदम का समर्थन किया। उनके समर्थन ने ही देवादिदेव को खुलकर साँस लेने के लिए वायु-मंडल की रचना की। पश्चिम बंगाल के रक्तोत्सव की ओर से मुँह फेरकर देवादि॰॰ बांगलादेश के मुक्ति-संग्राम की सहायता के लिए बुद्धिजीवियों की क॰

बनाता है। उसके लिए उसे समर्थन भी मिलता है। जयप्रकाश नारायण के पक्ष में हस्ताक्षर के लिए भी उनका समर्थन उसके साथ है। जयप्रकाश के विपक्ष में हस्ताक्षर करने हों तो उसमें भी उनका सहयोग प्रस्तुत है।

अकेला बलवत ही सड़क पर बैठकर पेशाब नहीं करता। उसका आचरण स्वाभाविक था। आज के तमाम ऊँचे-ऊँचे अधिकारी तब अपने को जनता का पक्षधर सिद्ध करने के लिए देवादिदेव के साथ जनता के सामने ही बैठ सू-सू कर बहुत आनन्दित होते। उनके निकट यह एक सर्वहारा चेष्टा थी। आज के एक नेता ने बचपन तक में कभी 'बंदर' शब्द का उच्चारण नहीं किया था। 1944 में एक सभा के अंत में उन्होंने दमकते चेहरे से कहा, 'भाई देबू ! आज मेरे मुँह से एक गंदा शब्द निकल गया—साला। जानते हो, यह शब्द कहकर मैंने आपने को बहुत हलका महसूस किया—लिबरेटेड होने का भाव।'

देवादिदेव ने कहा था, 'अपने एक रिश्तेदार का नाम लेकर ही लिबरेटेड हुए, दादा !'

बलवत को इन सब पर विश्वास था। लेकिन नहीं, देवादिदेव में कोई कपट-भाव न था। उक्त आचरण भी विश्वास के कारण था। उनका विश्वास था कि वह ठीक काम कर रहे हैं। मणि प्रामाणिक असहयोग आंदोलन के समय से ही घाट-कुघाट रहता आया था। वह कहता था, 'अरे, इस तरह जनता के पास नहीं जाया जायेगा। इससे कुछ नहीं होगा।' बहुत ही सिनिक था। वह आँतों के कैंसर से कब का मर-खप चुका है।

बलवत ! बलवत लाल ! उसके दिमाग़ में लाल सूरज था, उसी गाने की तरह, 'देखो सुर्ख़ सवेरा आता है, आजादी का, आज़ादी का।' 1944 में देवादिदेव की उम्र बत्तीस थी—और उसकी उन्नीस। बस्ती के इलाक़े का समाचार लिखता था कामरेड। बस्ती बलवंत का कर्मक्षेत्र था—चौरासी नरकों का कुंड। वह अब भी ज्यों की त्यों है। उस बस्ती में भी इंसान घर में रहता है, जहाँ चाहे मलत्याग करता है, गंदा और दूषित पानी पीता है। शराब पीकर जिस किसी को पीट देता है। हमारे यहाँ का कोई बलवत वहाँ कभी न रहने जाता।

लेकिन वह बलवंत वहाँ रहता था। यह सोचकर देवादिदेव अपने को

बहुत निश्चित-सा महसूस करता। गाँव वालों के बीच रहकर ही उनके बारे में लिखना ठीक होता है। यह बात वह भी मानता है, लेकिन वह स्वयं उनके बीच रहकर काम न कर सकता। इसीलिए मन कचोटता रहता। बलवंत वहाँ उनके बीच रहकर काम करता है, यह सोचकर उसे बड़ी बेफ़िक्री भी होती। यह सोचकर देवादिदेव सो सकता था, बशर्ते बलवंत उसे सोने देता।

वह बीच-बीच में आ पहुँचता। इसी बीच वह ईप्सिता के साथ बहुत घनिष्ठ हो गया था। उसे देखते ही ईप्सिता कहती, 'कोई बात नहीं, पहले चाय पी लो। उसके बाद पेट भर खाना खाना। बाद में बाहर के कमरे में लेट जाना।'

बलवंत के पिता ने एक बार ईप्सिता के लिए काँच की चूड़ियाँ और एक पुड़िया सिन्दूर, गेहूँ के दलिये के कुछ लड्डू भेजे थे। बलवंत की माँ नहीं थी।

देवादिदेव को देखते ही बलवंत हमला करता, 'क्यों, आदमी इस घृणित ढंग से क्यों जीये? उसका क्या कसूर है? ऐसे आदमी की कहानी कौन लिखेगा? कब वह कहानी लिखी जायेगी?'

—तू लिख।

इस बीच बलवंत देवादिदेव के लिए 'तू' हो गया था, लेकिन देवादिदेव 'आप' ही बना रहा था। 'तू लिख' की बात ने बलवंत को अंतिम परिणति की ओर ढकेल दिया। कभी-कभी शब्द कैसे शक्तिशाली बन जाते हैं!

—हाँ, जरूर लिखूँगा।

—क्या लिखेगा, कहानी?

—न दादा, कहानी नहीं लिखूँगा। जो देखूँगा वही लिखूँगा। कहानी में ऐसा नग्न यथार्थ नहीं आ सकता।

—गोर्की की 'लोअर डेप्थ्स' पढ़ी है?

—भूल गया। 'लोअर डेप्थ' रोज देखता रहता हूँ न।

—मैंने कहा, कहानी में सच्ची बात लिखो।

—अँग्रेजी में?

—क्यों नहीं?

—अंग्रेज़ी में लिखने से बहुत लोग पढ़ेंगे।

—ज़रूर।

—दादा, ख़याल बहुत अच्छा है।

—लिख सकेगा ?

—देखूंगा। अंग्रेज़ी में लिखना ठीक रहेगा।

—इसके लिए ख़ास पेशे वालों की बस्ती में जाना बहुत अच्छा रहेगा।

—वाह दादा ! राह दिखा दी। आज मैं भाभी को गाना सुनाऊँगा। भाभी मेरे लिए पूरियां बनायेंगी।

बलवंत ने भरपेट पूरियां खायीं। ईप्सिता और बलवंत एक-दूसरे के साथ कितने सहज थे, यह देखकर देवादिदेव को आश्चर्य होता। उसी दिन देवादिदेव को पता चला कि ईप्सिता बलवंत के लिए एक लाल स्वेटर बुन रही थी।

—क्यों ईप्सिता ?

—क्यों नहीं ? कहां-कहां घूमता फिरता है। उसका शरीर भी ऐसा है कि ठंड लग सकती है।

देवादिदेव कोताज्जुब हुआ। उसी दिन उसे पता लगा कि बलवंत को ठंड बहुत जल्दी लग जाती है। यह भी मालूम हुआ कि ईप्सिता ने बलवंत को ब्रिन्कानिस टॉनिक की दो शीशियां ख़रीद दी थीं।

बलवंत ने पूरियां खायीं। स्वेटर पूरा बुन जाने पर उसने उसे पहनने के लिए आने का वादा किया। उसके बाद कहां डुबकी लगा गया कि फिर दिखायी न पड़ा। ईप्सिता ने उसके लिए स्वेटर बुना। उसके आगमन के लिए ईप्सिता कैसी परेशान थी ! लेकिन देवादिदेव के पास परेशान होने का वक़्त नहीं था। वह बहुत-से बड़े-बड़े कामों में व्यस्त था। उसने ईप्सिता को समझाया भी कि उसके लिए इस तरह परेशान मत हो ! लेकिन बलवंत तो जैसे लापता हो हो गया था।

एक दिन घर लौटने पर अजीब दृश्य देखा। बलवंत शायद स्नान कर रहा था। बहुत कमज़ोर हो गया था। लेकिन उसकी शक्ल स्याही रंगे बुद्धुओं-सी हो गयी थी। कपड़े भिखारियों-से भी गये-गुज़रे पहने था। आंखें उत्तेजना से, ख़ुशी से चमक रही थीं। यक्ष्मा ! बलवंत चहक कर

बोला, 'दादा, कमाल कर दिया।'

—क्या किया?

—'फ्राम द लोअर डेप्थ्स' नाम कैसा लगता है?

—किसका नाम?

—चमार बस्ती के डेढ़ सौ औरत-मर्द-बच्चों-कच्चों के बारे में सीधा एक रिपोर्ताज लिखा है। दादा, कहानी मुझसे बनी नहीं। उनके जीवन ही कहानी बन गये हैं। दादा! देखो मैंने यह लिखा है। देखिये न।

देवादिदेव के हाथों में पृष्ठ देकर बलवत ने खाँसना शुरू किया। खाँसी की आवाज बहुत भयानक रूप से खोखली थी। सुनकर ईप्सिता चौंक पड़ी। सुनते ही समझ में आ जाता था कि जहाँ से खाँसी आ रही है, वह जगह एकदम खोखली हो गयी है।

उसकी अँग्रेजी में एक विशेष स्वाद था। मेधावी होने के कारण एक हिन्दी स्कूल में फ्री पढ़ा था। पिता दशरथ लाल ट्राम के होशियार कर्मचारी थे। बड़ा दुलारा बेटा था उनका। बेटे को पढ़ाने-लिखाने में पिता की बहुत रुचि थी। उसकी अँग्रेजी साहिबी अँग्रेजी न थी, निजी अँग्रेजी थी।

उसके जीवन की परिधि बहुत छोटी थी। उसने कुछ लेख ही लिखे थे। थोड़े-से समय में ही बलवत ऐसा पा गया था कि गर्व किया जा सके। जिस चमार बस्ती पर बलवत ने लिखा था, वहाँ आज पिकनिक गार्डेन्स नाम की कालोनी बन गयी है। ढेरों घर बन गये हैं। देवादिदेव हाल ही में वहाँ गया था। सतु राय के घर। मकानों के समूह को देखकर उसे लगा था कि यह वही जगह है। अब वहाँ कोई नीची बस्ती नहीं है। नये-नये मकान बन गये हैं, लेकिन अब चमड़ा मजदूरी करने वाले वहाँ नहीं रहते।

आज बलवत के बारे में सब-कुछ लिखा जा चुका है। बहुत कुछ तो देवादिदेव ने स्वयं लिखा है। उसकी अँग्रेजी की कॉलिंघम ने बहुत प्रशंसा की है। 'मैं तल की गहराइयों से लिखता हूँ।' बलवत की रचना के प्रथम अनुच्छेद को पढ़कर ही देवादिदेव ने कुर्सी का हत्था पकड़ लिया। वह हार गया था, बिलकुल हार गया था। बलवत की रचना जीवन-यंत्रणा से पीड़ित शरीर से काटा हुआ खून से लथपथ टुकड़ा था। देवादिदेव के यथा-

साध्य प्रयत्न करने पर भी क्या होता ! उसकी रचना तो मध्यवर्ग की नफ़ासत से सजा लेखन है, यह बात देवादिदेव तभी समझ गया था। बलवंत ही उसका प्रतिद्वंद्वी है।

ईमानदार बनो, ईमानदार बनो देवादिदेव ! डेजी फूलों की गंध में डूब कर उसने अपने से कहा—ईमानदार बनो। ईप्सिता, इस निर्जन में, पहाड़ पर लेट कर मै बहुत-सी सच्ची बातें अपने से कह रहा हूँ।

बलवंत की रचना की पहली पंक्ति पढ़ते ही मुझे गोर्की की पंक्तियां याद आने लगी थीं। युवक गोर्की की आत्मकथा का प्रथम खंड इस सहज वाक्य से समाप्त होता है, 'और संसार में प्रवेश किया।' बलवंत हमारा गोर्की है। वह भी बाहरी दुनिया मे निकल पड़ा था। भारत में बाहर की दुनिया देखने के लिए अपने जीवन का दायरा छोड़कर आम आदमी के जीवन में प्रविष्ट हो जाओ, श्रमजीवी मानव के जीवन में। बलवंत वहीं गया था। वहां जाकर उसकी हालत बहुत ख़राब हो गयी थी। एक इंसान अचानक ब्रह्मांड में प्रवेश कर जाये तो उसे वहां सब-कुछ देखने को मिल जाता है। शुरू में उसे डर लगता है। वह देखेगा कि वह जिस आयाम में आ पहुँचा है, वहां करोड़ों सूर्य खेल रहे है। वह ग्रहों के संसार का मानव है। धरती के मनुष्य के निकट एक सूर्य ही विस्मय की चीज है। सूर्य की प्रतीकात्मक शक्ति ऐसी दुर्दमनीय है कि वेदों के ऋषियों से लेकर रवीन्द्रनाथ तक सभी सूर्य को तरह-तरह से देख गये हैं। आज भी सूर्य कवि-लेखकों को नये-नये रूपों में दिखायी पड़ता है। ब्रह्मांड में पहुँच कर इंसान देखता है कि करोड़ों सूर्य जल रहे हैं, करोड़ों योजन तुषार जमा हुआ है।

बलवत ने जाना था कि उसने अभी तक जो जीवन देखा है उसकी अभिज्ञता बहुत सीमित, बहुत तुच्छ है। चमारों की दुनिया ब्रह्मांड के समान भय पैदा करती है। कच्चे चमड़े की दुर्गंध,'बस्ती को जाने वाली सड़क पाखाने और कीचड़-फिसलन से भरी है, हर कोठरी का फ़र्श कीचड़ से गीला है, छत टूटी है। एक ही गढ़ैया के कीचड़-भरे दुर्गंधयुक्त पानी से नहाना, रसोई बनाना, पानी पीना होता है। सुअरों के साथ इंसान रहता है। हर घर में यक्ष्मा-कुष्ट-कृमि-प्लीहा-रक्ताल्पता है। मालिक-महाजन से बयाना लेते वक्त चमार डरे-डरे रहते थे कि कहीं उनकी छाया महाजन

पर न पड़ जाये। देखा था कि दूकानदार इन्हें पल्ले में दूर से सौदा देते हैं कि कहीं छू न जायें। बलवत जिस दिन वहाँ गया था, उसके दूसरे दिन गोकुल चमार की लड़की आग से जल गयी। नन्ही बच्ची थी। डॉक्टर ने उसका मुआयना छूकर नहीं किया। बलवत को साथ में देखकर बोले, "शायद कम्युनिस्ट है ? ऐं ! तभी तो कह रहा हूँ कि किसी शरीफ के मन में चमार के लिए ऐसी दया कैसे होगी ?'

डॉक्टर जानते थे कि कम्युनिस्ट शरीफ आदमी नहीं होते। बलवत मरहम-वरहम ख़रीद लाया। बच्ची जी उठी और इसी तरह की बहुत-सी घटनाओं के बाद बलवत को उन लोगों ने अपना आदमी मान लिया और बलवत उस ब्रह्माण्ड के हृत्पिण्ड में पहुँच गया। चमारों का, चमड़ा मज़दूरों का जीवन महाजन के यहाँ बधक है। उनका पेशा सबकी नज़रों में घृणित है। इस कारण दूकानदार से लेकर सभी लोग उन्हें दुरदुराते रहते हैं। लेकिन आश्चर्य की बात है कि किस्सा कुछ और ही है। ये सब बिहार के एक विशेष अंचल के निवासी हैं। वहाँ उनका जीवन और अस्तित्व दो महाजनों के हाथों बिका हुआ था। कलकत्ता भाग आकर जीते रहने की विवशता उनके देस के महाजन की भूख सूद-दर-सूद मिटा रही है। लेकिन वे तो आये बग, भाग्य आया संग। उन्हीं दो महाजनों के बेटे यहाँ आकर महाजन बन बैठे। इसका फल यह हुआ कि जानवरों का चमड़ा कमाने के साथ-साथ उनका चमड़ा भी कमाया जा रहा था। कलकत्ता के महाजन, देस के महाजन की भूख मिटाकर वे कलकत्ता में हवा खाकर जी रहे हैं। इस चक्कर से उन्हें निजात दिलाने की सामर्थ्य किसी में नहीं। यह सब जानने के बाद बलवत को विश्वास हो गया कि इनका, लँगोटी वाले हर चमार का अपना अलग सौर जगत है। प्रत्येक को केंद्र बनाकर सूदखोर महाजन उनके गिर्द चक्कर लगा रहे हैं, लगाये जा रहे हैं। देस की तरह यहाँ ये महाजन से ऐसे डरते हैं मानो यमराज हो। यहाँ के महाजन बड़े बाज़ार के बनिये हैं।

उसकी बातें सुनकर देवादिदेव समझ गया था कि बलवत के हाथ मूल्यवान चीज लग गयी है। उसने कीमती चीज लिखी है। तभी उसने चाहा था कि बलवत का मर जाना ही ठीक है। ऐसा उसने क्यों

चाहा था ?

खांसी रुकने पर बलवंत मुंह पोंछ कर हांफ रहा था। देवादिदेव को खांसी का खोखलापन अच्छा नहीं लगा।

—कई दिनों से खोज रहा हूं। कहां थे, दादा ?

—बाहर।

—कांफ्रेंस कर रहे थे ?

—हां, लेखकों-कलाकारों की कांफ्रेंस चल रही है।

—इस तरह शरीफ़ आदमियों के संगठनों-कांफ्रेंसों से क्या होने वाला है ? दरअसल आपके-हमारे लिखने से ही क्या होगा ? पढ़ेंगे तो शरीफ़ लोग ही ?

—तुम ये सब बातें नहीं समझोगे।

—वाह दादा, वाह ! ऐसे बिगड़ रहे हो कि 'तुम' कहने लगे। सो कहिये, पर आपके लिए भी यह सब समझना संभव नहीं है। आप भी तो शरीफ़ों में से है। आप सभी का लेखन बहुत अच्छा है। आपका, सुकान्त का, सुभाष-दा का, और शायद मेरा भी, मुझे भी तो आप लोग लेखक कहते हैं। लेकिन हम सबकी लिखी चीजें मध्यमवर्ग के पाठक ही पढ़ते हैं, उस मध्यमवर्ग के जो कुछ नहीं करने वाला है। मध्यमवर्ग अपनी मेहनत से कोई रचनात्मक काम तो करता नहीं। यह वर्ग तो इस व्यवस्था में उत्पादक-शोषक-शासक, किसी श्रेणी में, किसी वर्ग में नहीं आता। उनका जीना बहुत ही सेकेंडहैंड, बहुत ही बेकार-सा है। वे किसान नहीं हैं, कारख़ाने के मजदूर नहीं हैं, मेरे देखे हुए चमड़े के मजदूर भी नहीं। वे यह सब प्रतिबद्ध लेखन पढ़ें या नहीं, क्या फ़र्क पड़ता है ? जिस लेखन के पढ़ने से कुछ हो, क्या वे उसे पढ़ते हैं ?

—नहीं।

—क्यों नहीं पढ़ते ?

बलवंत न जाने कैसे ऐसा दुस्साहसी हो गया था। पार्टी के नन्दलाल, दुलारे, देवादिदेव बसु को अभियुक्त बनाकर बलवंत सहसा बोला, 'क्यों नहीं पढ़ते ? किसान-मजदूरों के आंदोलनों से क्या होगा ? उन्हें पढ़ना-लिखना क्यों नहीं सिखाया जा रहा है ? बिना सिखाये वे अपने अधिकारों

को कैसे जान पायेंगे ? दरअसल बात कुछ और ही है । शरीफ लोग उनसे खिलवाड़ कर रहे हैं । किसानों के लिखना-पढ़ना न सीखने से नेतागिरी शरीफ आदमियों के हाथों में ही रहेगी ।'

—तुम क्या इन सभी बातों को समझते हो ?

—तो आप समझाइए । यह भी तो एक काम है, है न दादा ? हाँ, बलवंत बिहारी बुद्धू है, ट्राम मजदूर का लेखक-बेटा । उसका सोचने का तरीका गलत हो सकता है । ठीक है । लेकिन बलवंत ने तो आपको 'दादा' कहा है । छोटे भाई को समझ न हो तो आप समझा दें । समझा देंगे न ? ठीक ! खुद भी समझिये और जिससे सभी कुछ ठीक-ठाक रहे वह कीजिए । मैं चला ।

—कहाँ जा रहे हो ?

—घर जाऊँगा । बहुत दिनों से नहीं गया ।

—सब तुमने गुड़ किया है । बताया भी नहीं कि क्या कर रहे हो । पार्टी क्या तुम्हें रोक रही थी ?

—किससे कहता ?

—अखबार के ऑफिस में कह सकते थे ।

—क्यों दादा, क्योंकि मैं बलवंत हूँ । मैं भी तो [illegible] [illegible] निक मोर्चे का कार्यकर्ता हूँ, कलाकार हूँ । कलाकार-लेखक तो [illegible] से काम करते हैं । कल्चरल फ्रंट में शामिल जो [illegible] गीत बनाते हैं, उनसे कोई पूछता है ?

—ऐसा कहने से तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

—काम करता था, दिखाई नहीं दी, बस ।

—लिखा हुआ रख जाना ।

—क्यों ?

—पढ़कर देखूँगा ।

—उसके बाद ?

—उसके बाद बताऊँगा कि उसका क्या [illegible]

—जी, दादा !

—क्यों ?

—इसे हेमेन-दा ने पढ़ा है, और वही छाप भी रहे हैं। बंबई भेज भी दिया है। यह तो प्रारंभिक पांडुलिपि है, आपको दिखा दी।

—पहले हेमेन को क्यों दिखाया ?

—अशोक-दा ने कहा था।

—अशोक को कैसे मालूम हुआ ?

—उसे पता था कि मैं क्या काम कर रहा हूं। वही तो वहां जाते थे, मुझे दवाई देते थे, बस्ती के आदमियों को दवा देते थे।

—मुझे तो इस सब का कुछ भी पता नहीं है।

—अशोक-दा से ही तो भाभी को मालूम हुआ।

—मुझे यह भी नहीं पता।

—भाभी बड़ी ग्रेट हैं, दादा ! मेमसाहब तो वह बाहर के लिए हैं। शी इज़ ए ट्रू मदर—सच्ची मां।

बलवंत चला गया। देवादिदेव का कलेजा अजीब आक्रोश से जला जा रहा था। अशोक ही सारी बुराई की जड़ है। वह न होता तो बलवंत अपनी पांडुलिपि पहले देवादिदेव को ही देता। अशोक देवादिदेव पर विश्वास नहीं करता है, इसीलिए उसने पांडुलिपि हेमेन को देने को कहा था। हेमेन के हाथों में जाने का मतलब तत्काल प्रकाशन होगा। प्रकाशित होने पर बलवंत का नाम एक बड़े विस्तृत पाठक-समाज में स्वीकृति पा जायेगा। बहुत ही बुरी बात है। अशोक के पास अभी जाना होगा। अशोक बलवंत को देवादिदेव की उपेक्षा करना क्यों सिखा रहा है ?

अशोक अकेला मिलता तो देवादिदेव उससे क्या कहता, नहीं कहा जा सकता। लेकिन वहां बैठा था हेमेन। हेमेन में किसी भी व्यक्ति में गुण खोज निकालने की आश्चर्यजनक सामर्थ्य थी। हेमेन ने ही वरुण से कहा था कि 'जनयुद्ध बेचने के लिए और लोग भी हैं। जाओ, बट्क या जॉर्ज के पास रहो। तुम्हारा गला गाने के लिए बड़ा अच्छा है।'

वरुण को यह सुनकर बड़ी खुशी हुई। यह सही है कि उसने 'जनयुद्ध' और 'पीपुल्स वार' बेचना बंद नहीं किया, लेकिन गाने भी गाता रहा। गाने वह बहुत अच्छे गाता था। क़यूर कामरेडों के फांसी का गीत था :

'लौटा दे लौटा दे हमें क़यूर बंधुओं को,

सकते थे ? सभी-कुछ संभव था !'

इस तरह का कुछ भी देखकर दीप असहिष्णु हो जाता था। उस समय देवादिदेव को लगता कि यह ज्यादती है। काम से बचने का पार्टी-कामरेडों का ढंग देखकर दीप इतना असहिष्णु क्यों हो उठता है ?

हेमेन कहता—'आर्टिस्ट भी आदमी होता है।'

—कैसा आर्टिस्ट ?

देवादिदेव समझ नहीं पाता था कि दीपक को कोई गंभीरता से क्यों नहीं लेता था ? दो-एक बरस बाद सुना कि अनेक लोगों से बड़ी मुश्किल से रुपये जमा कर-करके वह फ़िल्म की शूटिंग करता रहा । फ़िल्म का नाम था 'मानुष'। कहानी, पटकथा और निर्देशन दीप का ही था। देवादिदेव ने सुना था, लेकिन दखल नहीं दिया । फ़िल्म के बारे में उसे भीतर से ही कोई उत्सुकता न थी। बहुत-सी चीजें एक साथ समांतर चलती रहती हैं। प्रथम अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह हुआ था। हर फ़िल्म देखकर बाहर निकलने पर लगता था कि फ़िल्म बहुत ही शक्तिशाली माध्यम है, लेकिन इस देश का सिनेमा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कभी भी ऊपर न उठ सकेगा । उसके बाद ही बनी 'पथेर पांचाली।' उसी दौरान 'मानुष' देखकर सहसा देवादिदेव को लगा कि फ़िल्म बनाते वक़्त दीप बहुत ही युवा था।

हेमेन बहुत ही स्नेह से दीप को सहारा देता था। जोशी काल, रणदिवे काल, उसके बाद और दूसरे काल—एक के बाद एक काल व्यक्ति के नाम से चिह्नित होता जा रहा था। चिह्नित काल का एक जैसा रहना जरूरी नहीं था। उसी रणदिवे काल में देवादिदेव हेमेन का पता लेने के लिए उसके घर भागा-भागा गया था। तभी वहाँ दीप भी अप्रत्याशित रूप से घुस आया। लंबोतरा चेहरा, दुबला शरीर, उस पर अलवान, हाथों में एक भद्दा-सा छपा काग़ज था।

—ख़बर सुनी ? कुछ पता है ? नहीं पता ? महत्वपूर्ण, अहम ख़बर भी नहीं मालूम ?

सोचने पर देवादिदेव को सहसा ऐसा लगा कि उसके पास हमेशा महत्वपूर्ण ख़बर रहती है। जिस ख़बर पर महत्वपूर्ण विशेषण लगाया

आता है, वह मोटे तौर पर सामान्य ही होती है।

1976 वर्ष का अंत भी इसी तरह का था। 25 दिसंबर की पार्टी। प्रेमानन्द का मकान। देवादिदेव सज-धजकर निकला तो तीन लड़के उसे एक भद्दी-सी पत्रिका थमा गये। उसमें 1976 के महत्वपूर्ण समाचारों की सूची थी। साथ ही लड़कों ने उसमें कई भोंडे मजाक किये थे। लिखा था : '1976 का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष है। इस उपलक्ष्य में महिला वर्ष के शुरू में ही पश्चिमी बंगाल में, उग्रपंथियों की सहयोगी होने के संदेह में एक महिला को गोली से मार डाला गया है। जनवरी का जरूरी समाचार यही है। दिसंबर की पहली तारीख की खबर थी कि तेलंगाना के प्रसिद्ध भूमैया गौड को हैदराबाद जेल में फांसी। इन दोनों समाचारों के साथ टिप्पणी लगी थी : इन दोनों व्यक्तियों में से किसी को भी दोस्तोएवस्की के बारे में पता था या नहीं, कोई नहीं जानता। जैसे रूस के जार निकोलस ने दोस्तोएवस्की को प्राणदंड से अंतिम समय में क्षमा कर दिया था, उसी तरह फांसी के ऐसे सजायाफ्ता लोगों को अंतिम समय में राष्ट्रपति के सामने क्षमा की अर्जी पेश करने की छूट है ताकि कोई यह न कह सके कि जार निकोलस भारतीय प्रभुसत्तासम्पन्न प्रजातांत्रिक गणतंत्र से अधिक दयावान थे। महत्वपूर्ण समाचार यह भी है कि शायद राष्ट्रपति को भी दोस्तोएवस्की के बारे में पता नहीं।'

आमतौर पर महत्वपूर्ण समाचार राजनैतिक हत्या से संबंधित होते थे। उसी रणदिवे-काल की बात है। अभागा हेमेन हरिण के घर गया है, यही पता लगाने के लिए जब वह हेमेन के घर पहुंचा तो दीप महत्वपूर्ण समाचार लिये मिला था। समाचार-पत्र बहुत ही भद्दा छपा हुआ था। उसने वह उसे थमा दिया था।

प्रमुख समाचार चिल्लाकर कह रहा था - 'लतिका सेन पुलिस की गोली से मारी गयी।'

मर गयी लतिका, संपूर्ण रूप से मृत ! 'नहीं, वे मरी नहीं' जैसी बातें अपने को समझाने-भर को थीं। मौत तो मौत ही होती है। भद्दे तरीके से छपा अखबार बिकता है, कलकत्ता में बिकता है। लतिका सेन का छोटा बेटा मां की बात लिखता है। बहू बाजार स्ट्रीट में गोली

चली। उस समय यही लगता था कि समय ख़ून से लथ-पथ है। चारों ओर ऐक्शन-ही-ऐक्शन—मुठभेड़-ही-मुठभेड़। 'यह आजादी झूठी है—भूलो मत, भूलो मत।' गुस्से से भरा नारा था। वामपंथी दलों के कार्यकर्ता या तो जेल में थे या अंडरग्राउंड। अतुल गुप्त न छूटने तक हेबियस कॉर्पस के आधार पर जेल में बंद था। लेकिन अंत लतिका का ही आया। दूसरे ही दिन सड़क पर से ख़ून के दाग़ मिट चुके थे। स्वतंत्रता के फ़ौरन बाद ही। उस समय कार्पोरेशन का जमादार बहुत तड़के सड़क धो देता था। वे सब बातें अब दूर का सपना हो गयी हैं। एस्प्लेनेड पर कभी बड़ी-बड़ी रंगीन टैक्सियां और अभिजात फिटन गाड़ियां थीं। सपना-सा लगता है।

हेमेन रणदिवे-काल को कंडम करता था, बहुत बुरा-भला कहता था। वह कहता था, ऐसा करने से कुछ नहीं होगा। यह वायलेंस, यह हिंसा ठीक नहीं है, समझे। अभी जरूरत है गांवों में जाकर काम करने की।

1972 के शुरू-शुरू में, बरानगर-काशीपुर की जन-हत्याओं से बहुत पहले, हेमेन की लाश मैदान में पड़ी मिली थी, बहुत तड़के।

पार्टी-विभाजन के समय हेमेन देवादिदेव के मुक़ाबले में अधिक वाम का पक्षपाती बना और वाम होने पर वाम होता चला गया। हेमेन सब-कुछ गहरे मनोयोग के साथ करता था। यह काम भी उसने उसी तरह किया। उग्र से उग्रतर वामपंथी बन रहे लोगों का क्या परिणाम होगा, यह बात देवादिदेव से अधिक कौन जानता था? हेमेन के लिए देवादिदेव बहुत ही परेशान हो उठा। मित्र को समझाने के लिए भागा-भागा उसके पास पहुंचा।

—हेमेन, यह हिंसा की राजनीति है।

—क्या आपत्ति है इसमें?

—क्या कह रहे हो?

—अरे, प्रजातंत्र में सब चलता है। देव, अगर यही हिंसा की राजनीति है, तो कहना होगा कि तुम्हारी अहिंसा की राजनीति ने ही यह

रास्ता चुनने के लिए मजबूर किया है।

—नहीं हेमेन, यह तुम ठीक नहीं कर रहे हो।

—तुम तो कठपुतली हो। जैसे नचाया जाये वैसे नाचते हो। तुम जो कहना चाहते हो वह भी तुम्हारी नहीं, किसी और की बात है।

—मैं तुम्हारा दोस्त हूँ।

—तुम किसी के दोस्त नहीं बन सकते, देव !

—हेमेन, यह बात क्या तुम दिल से कह रहे हो ?

—घर लौट जाओ, देव !

—हेमेन !

देवादिदेव हारता जा रहा था। उसे हेमेन को समझाने का आदेश मिला था। इसके अलावा वह स्वयं भी भीतर से परेशान था। लेकिन हेमेन के चारों तरफ़ था, एक अदृश्य और चीन की दीवार की तरह दुर्भेद्य प्रतिरोध। देवादिदेव ने कभी ट्राम वालों की हड़ताल पर 'प्रतिरोध' नाम का एक उपन्यास लिखा था।

—तुम हमें का समझओगे ? हम हिंसा की राजनीत करत हैं ? और ई राजनीति का दमन करत है गोरमेन्ट अहिंसा के तरीका से ? बेटवन का गोली से मारत है। आंध्र मा तो पुव डर का राज है। जेल मा हत्या करत है, ई कैसे होत है ? अहिंसा से ?

—तुम तो बोलने ही नहीं देते।

—बोलो कुच्छ नाहीं। हम तुमसे मौन पार्टी का दुश्मन नाहीं, देव ! रहे विमान कट पर। यद्दि वाद समझना, पार्टी छोड़ि के कुच्छो नाहीं जानत हई। तोहरी मनन पार्टी के विमान पर नाहीं चलत हई। विचारों मगर नाहीं छिपत हई। किसी का मसुगर नाहीं बनउबी।

—तुम्हें अपना राजनैतिक मत बदलने की ऐसी कौन-सी बात आ पड़ी है ?

—तुम कौन, जो तुमसे बतायें ? 'बदलना' कैसा ? बेहद लॉजिकली, बहुत सोच-समझकर, स्टेप बाई स्टेप, धीरे-धीरे हम इस मत में आये हैं।

—नहीं, तुम...।

—घर जाओ।

1971 से ही हेमेन शायद अंडरग्राउंड था। 1971 के अन्त में कलकत्ता में एक ख़बर फैली। आश्चर्य है कि उस समय सभी गोपनीय ख़बरें वारदात होने के साथ-साथ पूरे कलकत्ता को तुरंत मालूम हो जाती थीं। समाचार मानो अपनी शक्ति से अपने-आप ही फैल जाते थे। समाचार इस तरह था—'कल मध्यरात्रि को मध्य कलकत्ता के डिगामांगा लेन से पुलिस ने अनुपम दास गुप्त नाम के एक मध्य वय के व्यक्ति को गिरफ़्तार किया। यह व्यक्ति घोर आतंकवादी है...।' मध्य शब्द का तीन बार प्रयोग सभी की नजरों में आया और सवेरे का अख़बार हाथों में आने से तीन घंटे के बाद ही देवादिदेव से गोपी नाम का एक गुंडा कह गया, 'सुना है, हेमेन बाबू को पुलिस ने पकड़ लिया है ?'

अनुपम ही हेमेन है या नहीं, यह जानने के लिए देवादिदेव भागा, लेकिन देवकी बनर्जी ने ज़रा-सा भी सहयोग न दिया। वह देवादिदेव को पिकासो के एक चित्र का प्रिंट दिखाने में लग गया। हेमेन के बारे में 'कुछ पता नहीं' कहने से ही सब पता चल गया। हेमेन ही गिरफ़्तार हुआ है, इसमें अब संदेह नहीं रहा। देवादिदेव के घबराहट-भरे प्रश्नों को विपुल ने सस्नेह सुना और बोला, 'अगर पता चला तो ज़रूर बता दूंगा।' उसके बाद ही विपुल का संदेशवाहक एक बंद लिफ़ाफ़ा लेकर आया। उसमें क्रिकेट के मैच का एक टिकट था और एक सफ़ेद कागज़। इस पर विपुल ने कोई सबूत न छोड़ने के इरादे से टाइप किया हुआ था : 'कभी के सहपाठी की याद में।' बिना दस्तख़त, टाइप किया हुआ मज़ाक था। यह भी लिखा था कि 'लाइफ़ इज़ बट ए गेम ऑफ़ क्रिकेट।' जीवन क्रिकेट का खेल ही है। देवादिदेव समझता था कि विपुल क्या कहना चाहता है। यानी हेमेन के बारे में जो भी ख़बर मिले, उसे खेल-सा मानो, खेल में क्या अफ़सोस ! देवादिदेव ने गहरी सांस ली और पैक-लंच लेकर क्रिकेट देखने चला गया।

1972 के जाड़ों की एक सुबह घटी वह घटना जादू की कहानी हो गयी। उत्तर भारत के जो गड़रिये मैदानों में भेड़ें चराते हैं, उन्हें ही हेमेन की कटी-फटी देह मैदान में मिली। उस ज़माने में कलकत्ता में गोली लगी लाशें बंदगोभी की तरह पड़ी मिलती थीं, वह भेड़ें ही जानती हैं। भेड़ें बिदककर हट जातीं, भेड़ों के बच्चे भागने लगते और पुलिस का स्वर

सुनते। 'भाग् जाओ, भाग् जाओ', गोरखा पुलिस कहती और उनके भागने पर पुलिस का वही हाँक लगाने वाला कहता, 'अरे, भागता काहे ?' तभी एक जीप मैदान में आ जाती और एक दुबली-पतली औरत को पुलिस हाथ पकड़कर जीप से उतारती। हेमेन की पत्नी उस लाश को 'हेमेन' कहकर शिनाख्त करती। अब पुलिस निश्चिन्त हो जाती। लेकिन वे तब भी लाश हेमेन की पत्नी को न देते।

—क्यों नहीं देंगे ?

पुलिस अफसर हँसकर बोले, 'अब हमको पक्का हो गया कि यही हेमेन बाबू हैं। लेकिन सरकारी तौर पर, ऑफिशियली, यह अनजान व्यक्ति की लाश है। अनजान आदमी की लाश आपको कैसे दे दें ?'

—क्यों नहीं देंगे ?

पुलिस अफसर सोच नहीं पाते कि न देने का तर्क इसके दिमाग में क्यों नहीं घुस रहा है ? अभी वह सोच रहे होते कि क्या कहें कि अचानक हेमेन की पत्नी को कुछ याद हो आता है। वह चिल्ला उठती है, 'नाखून उखाड़ लिये हैं ? नाखून ? इसके नाखून कहाँ हैं ?'

चीखना रुक नहीं रहा है। महिला बेहोश हो जाती है और लाश लिए बिना घर लौट जाती है। पूरी घटना की अविश्वसनीयता एक सरकारी चिट्ठी पूरा कर देती है। चिट्ठी में लिखा है, 'जेल में जाकर हेमेन से मिलने के लिए महिला ने जो प्रार्थना की थी, वह मंजूर हो गयी है।

यही हेमेन तैंतालीस-चवालीस-पैंतालीस में पार्टी का अनुभवी व्यक्तित्व था। बलवंत के बारे में बात करने के लिए देवाधिदेव जब अशोक के घर गया, तो वहाँ हेमेन बैठा था। हेमेन के सामने देवाधिदेव अशोक से कुछ न कह सका। उनकी बातचीत ही सुनता रहा। बातें बलवंत के बारे में थीं।

—देखो अशोक, जो करना हो करो। खर्चा-वर्चा ? हमारे पास रेड-एड फंड नहीं है ? पीपुल्स रिलीफ कमेटी है। छुटकन का बचाव करना होगा। दिन मिलें तो मास्को भेज आयो।

—सब करूँगा।

—सबही परीक्षा कराय ले।

—करा लूँगा।

—पुष्टई खाय क जरूरत है।

—सबसे पहले जरूरत है पूरे आराम की। मैंने उसे डिस्पोज़ल से मक्खन दूध का पाउडर, अंडे का पाउडर ला दिया है।

—वासा पर तो कौनो नाहीं हो।

—दशरथ जी खाना बना देंगे।

—हस्पताल का इंतज़ाम ?

—कोशिश कर रहा हूँ।

देवादिदेव के मन में संदेह गहरी जड़ पकड़ गया। बोला, 'हेमेन, अशोक, तुम लोग बलवंत के बारे में बातें कर रहे हो ?'

—हाँ, देव !

—बलवंत को क्या हो गया है ?

—क्यों ?

—बताओ न।

—टी० बी० का शक हो रहा है—अशोक बोला।

—टी० बी० ?

हेमेन बोला, 'हाँ। अरे छुट्टी देना पड़ेगा। इलाज करावै होई, नहीं त बची न।'

—सच ही टी० बी० है क्या, अशोक ?

—हाँ।

—तुम तो डॉक्टर हो, अशोक !

देवादिदेव की खुली ईर्ष्या से हेमेन भी आश्चर्य में पड़ गया। बोला, 'देव ई हमार घर है। झगड़ा जिन करा।'

—रहने दो अपना घर। अशोक तो जानवर है। टी० बी० कहते हो और मुझे कुछ नहीं बताते।

—तुमको क्यों बतायें ?

—तुमको क्यों बतायें ?

—बलवंत मेरे घर आता है, मेरा बच्चा...।

—मैंने उससे जाने को नहीं कहा। मुझे पता नहीं कि वह तुम्हारे यहाँ जाता है।

—इसी आधार पर बता दो कि उसका रोग क्या है ?

'नहीं।' अशोक बहुत सख्त आवाज़ में बोला, 'उसे कोई भी कारण बताकर या बिना बताये, अपने घर से निकाल दो। लेकिन कभी यह न बताना कि उसका संदिग्ध रोग क्या है।'

—क्यों ?

—क्यों नहीं, 'यक्ष्मा' नाम ही उसका दिल तोड़ देगा। उसके ओरियेंटेशन में, उसकी समझ में यक्ष्मा माने ही मौत है। उसकी जीने की इच्छा और सक्रिय सहयोग की हमें जरूरत है, क्योंकि उसका जीवित रहना जरूरी है।

—वाह, अजीब दलील है।

हेमेन बोला—'तुम चले जाओ।'

अशोक ने कहा, 'अभी एक्स-रे नहीं हुआ है। थूक की परीक्षा नहीं हुई है। अभी कहा नहीं जा सकता कि उसे क्या रोग है !'

—तुम लोग जानवर हो, अशोक !

घर लौटकर देवादिदेव ने ईप्सिता को खूब गालियाँ दीं। कहता रहा—'बलवंत !! उसको लेकर साधुई करनी हो तो बाहर करो। पता है, उसे यक्ष्मा हो गया है ?'

—यक्ष्मा !

—हाँ। उसे लाड़ लड़ाने में मेरे बेटे की जान खतरे में पड़ सकती है। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।

अशोक ने बलवंत को अच्छा करने का पक्का इरादा कर लिया था। वैसे तो दशरथ का मकान उतना अच्छा न था, लेकिन काफी बड़ा था। लंबे दालान के बाद कतार-की-कतार कोठरियाँ थीं। ट्राम-सेवा के सभी कर्मचारी बलवंत को बहुत चाहते थे। किताब लिखकर बच्चू ने उनका सम्मान बढ़ा दिया है। उनकी माँएँ बच्चों को ठेलकर स्कूल भेजतीं। कार्पोरेशन के स्कूल में। अगर बलवंत पढ़ गया, तो तुम भी पढ़ सकते हो।

अशोक ने बलवंत की छाती का एक्स-रे लिया, थूक की परीक्षा की। उस समय तक सर्वरोगनाशक ऐंटीबायोटिक नहीं आयी थी। इंजेक्शन चलते थे, दवाइयाँ भी चलती थीं। उसने दशरथ से कहा था, 'इसके बाद

अस्पताल भेज दूंगा।'

—उसे क्या हो गया है? खोंखी रोग न?

—आप तो सब समझते हैं।

दशरथ ने बड़े विश्वास के साथ कहा, 'अस्पताल जाते ही ठीक हो जायेगा। उसकी जान की मुझे फ़िकर नहीं है। ज्योतिषी ने बताया था कि सत्तर बरस तक जीवित रहेगा।'

बलवंत को देखने के लिए पार्टी के लोग अकसर आते रहते थे। छपना शुरू होने के साथ ही 'फ्राम द लोअर डेप्थ्स' लेख पर कलकत्ता दीवाना हो रहा था। बलवंत चाहिए, बलवंत। युवा लेखकों में असली मेहनतकश घर के इस लड़के में सबसे अधिक संभावनाएँ हैं। अशोक रोज़ जाता था। उसके घर आना बंद हो जाने से देवादिदेव भी बेफ़िक्र था। एक दिन कहने लगा, 'अशोक उस दिन अचानक बेमतलब शोर मचा बैठा। वह तो ठीक है।'

—लड़का कैसा है?

—अब तो अच्छा ही बता रहे हैं। लेकिन...।

—लेकिन क्या?

—अस्पताल में उसे जल्दी ही सीट मिल जायेगी। वहाँ साल-भर के क़रीब रहने से ठीक हो जायेगा।

—बड़ी छुतही बीमारी है ना?

—मैं तो रोज जाता हूँ। बहुत-से लोग जाते हैं। घर लौटने पर कपड़े उतारकर, कार्बोलिक से हाथ-पाँव धोने पड़ते हैं।

—जाड़ा भी बहुत पड़ रहा है।

—तुम क्या कहीं जा रहे हो?

—हाँ, जा सकता हूँ।

कँपकँपी वाला जाड़ा पड़ रहा था। देवादिदेव का चटगाँव जाना निश्चित हो गया था। धनबाद में कोयले की एक खान में मीथेन गैस से आग लग गयी थी। मजदूरों-मालिकों में तनातनी पैदा हो गयी। देवादिदेव बलवंत के घर पहुँचा। बलवंत ने बैठने को कहा। वह बलवंत से काफ़ी परे हटकर बैठ गया। धनबाद कॉलियरी पर विस्तार से बातें करने लगा।

लड़ाई चल रही थी। 'युद्ध में मित्र शक्तियों को जीतना चाहिए। लड़ाई के लिए कोयले की बहुत जरूरत है। मजदूर दिन-रात कोयला खोद रहे हैं, लेकिन उन्हें ढंग की मजदूरी नहीं मिल रही है। तिस पर खान में आग लग गयी। गैस सांस घोंट देती है। खान की छत गिरने से तो वे मरते ही रहते हैं। कितने अफसोस की बात है कि जो इस सबके बारे में लिख सकता है, बीमार पड़ा है।

—मैं चलूं।

—नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है?

दशरथ को अटपटा लग रहा था। वह बोला, 'ये सब बातें उससे मत कहिये। पहले ठीक हो जाये तो वह यह सब काम करेगा।'

—मैं भी यही चाहता हूं। उसे अच्छा होना ही होगा।

उसके बाद देवादिदेव ने एमिल ज़ोला के बारे में बातें कीं। उस आदमी ने कोयले की खानों में जाकर 'जर्मिनल' लिखा था। वैन गॉग? वह भी तो कोयला-खानों में गया था। चित्र बनाने के लिए बलवत के जाने से ज़ोला और वैन गॉग दोनों का काम एक साथ होता। वह लिख सकता है, चित्र भी खींच सकता है। लेकिन नहीं, पहले बलवत ठीक हो ले। बलवत ने यह बातें सुनते-सुनते देवादिदेव का चित्र स्केच कर डाला। उसके बाद खांसना शुरू किया। दशरथ प्यार से बोला, 'सो जाओ, बेटे!' बलवत ने साफ चिथड़े से बलगम पोंछ कर कार्बोलिक घले पानी के बर्तन में कपड़ा फेंक दिया। पानी लाल हो गया।

दशरथ देवादिदेव को गली के मोड़ तक पहुंचा आता है। देवादिदेव अन्यमनस्क और गंभीर था। दशरथ समझ गया कि वह बलवत के लिए चिंतित है। बोला, 'खांसी में खून देखकर चिंता मत कीजिये।'

—चिंता न करूं?

—अशोक बता रहा था कि लाल ठीक हो जायेगा। लेकिन आराम की जरूरत है। क्या अस्पताल वाले उसे ले लेंगे? मैंने कह दिया है कि जरूरत हुई तो बेड के लिए पैसे दे दूंगा। जो कमाई कर रहा हूं, वह इसी के लिए तो है। फिर उसके लिए मैं अकेला ही तो नहीं हूं। पार्टी भी तो है।

—बलवंत ने कैसी उग्र किताब लिखी है !

यूनियन का पुराना कार्यकर्ता दशरथ झा सहज आभिजात्य से बोला, 'वह मजदूर का बेटा है, वही तो चमड़ा-मजूरों की बात लिखेगा। आप तो लिखने से रहे, कामरेड ! मजदूर का दुख मज़दूर ही समझता है।'

देवादिदेव लौट पड़ा था। फिर चटगाँव चला गया था। पुराने गायक से मिलने, गीत लिखवाने के लिए। बलवंत पिता से छिपकर, किसी को बताये बिना ही धनबाद चला गया था।

जाड़े के दिन थे। बरसात हो रही थी। उसके पास अधिक गरम कपड़े नहीं थे। पिता की ट्राम कंपनी मे मिला स्वेटर उसके पास था। वह देवादिदेव का स्केच मोड़कर रख गया था। अत्यन्त रोमांटिक भाव में, बीस बरस के प्रबल उद्वेग से, अपनी खाँसी के जैसे रक्त-भरे ब्रुश से लिख गया था : 'माई मास्टर, एज़ आई सी हिम' (मेरे गुरू, मेरी दृष्टि में)। वह तसवीर बाद में उसे ही दे दी गयी थी। वही तसवीर सारे फ्री-वर्ल्ड (मुक्त ससार) के देशों मे उसकी किताबों के पिछले आवरण पर छापी जा रही थी। बलवंत ठंड लगने से यक्ष्मा में निमोनिया होने से धनबाद के अस्पताल में ही मर गया था। उसकी स्मृति में आयोजित सभा में देवादिदेव ने रोते हुए कहा था, 'वह धनबाद क्यों गया था ? क्यों ? आख़िर क्यों ?' स्मृति-सभा में दशरथ झा न था। जन्म और रक्त का संस्कार। वह धनबाद से बलवंत की अस्थियाँ लेकर गया जिले के नेरुन्दा गाँव में फल्गू नदी में प्रवाहित करने गया था। उसकी सात पीढ़ियों के फूल फल्गू नदी में ही प्रवाहित किये गये थे।

स्मृति-सभा के बाद अशोक ने उससे कहा था, 'देव, तुम राक्षस हो। तुम्हारे साथ मेरा संबंध आज से समाप्त होता है।'

ईप्सिता ने कहा था, 'तुमने ही उसे मार डाला है। वह अशोक को लिख कर दे गया था कि दादा ने मुझे राह दिखा दी है'...ईप्सिता बहुत-बहुत रोयी थी।

उसके ठीक नौ महीने बाद उसके यहाँ मँझला बेटा पैदा हुआ। अशोक फिर उसके जीवन में कभी नहीं आया। उसने अपने को एकदम अलग कर

लिया। ईप्सिता ने कहा था, 'उम्र में तीस के कोठे में होने से क्या होता है? तुमने तो जैसे तय कर रखा है कि युवकों का खून पीकर जियोगे। यह तुमने क्या किया! जान-बूझकर...बलवत को...तुम खुद क्यों नहीं गये? भागकर चटगांव क्यों चले गये? क्यों?'—उसने कहा था, क्या कहा था? क्या वह ईप्सिता से बात करने का मौक़ा था? उस समय बलवन के बारे में लगातार लिखा जा रहा था। बलवंत के बारे में उससे अधिक कौन जानता था? मयुक्त बंगाल में जहाँ कहीं भी उसे बुलाया जाता, वहीं बलवत की स्मृति-सभाओं में उसे जाना पड़ता।

धूप गर्म होती जा रही थी। सूरज तप रहा था। डेजी की पंखुड़ियाँ झुकी जा रही थीं। हाँ, अभी शुरुआत थी। उसी दिन से ही उसने घर छोड़ा था। वह ये सभी बातें स्वीकार करेगा। तभी यहाँ से जायेगा।

दोपहर को ईप्सिता का टेलीग्राम लेकर डलहौज़ी से आदमी आया था, 'फ़ौरन चले आओ। ज़रूरी काम है। ईप्सिता।'

कालाटोप से डलहौज़ी। इस बार पैदल वापसी। रास्ता सुंदर था। दो घंटे में ही पहुँच गया। डलहौज़ी से टूरिस्ट लॉज। दूसरे दिन पहली बस से पठानकोट। भाग्य भी ऐसा कि पठानकोट आते ही कलकत्ता का टिकट मिल गया। आजकल टिकट मिलना मुश्किल होता है। लेकिन एक भले आदमी रिज़र्वेशन टिकट के साथ टिकट बेच रहे थे। वे कश्मीर जा रहे थे।

देवादिदेव स्टेशन पर ही रुक गया। पठानकोट में बहुत गर्मी थी। लू चल रही थी। हवा में जितनी धूल थी, उतनी ही आग भी। स्टेशन पर बैठे रहना ही अक़्लमंदी थी।

जिस भले आदमी ने टिकट बेचा था, वह उससे बातें करना चाहते थे। देवादिदेव सुनता जा रहा था।

—फ़ैमिली लेकर आया था।

—ओह!

—सोचा था डलहौजी बहुत अच्छा लगेगा। पंद्रह दिन रह जाऊँगा। इस यात्रा में कश्मीर जाने की तबीयत न थी।

—अच्छा !

—डलहौजी मुझे अच्छा नहीं लगा। तभी तो टिकट बेचकर कश्मीर जा रहा हूँ।

—समझा।

—आप कश्मीर गये हैं ?

—बहुत पहले।

शरीफ़ आदमी की पत्नी आगे आ गयीं। नमस्कार किया। बोलीं, आपने 'झील में वसंत' उपन्यास कश्मीर पर ही लिखा है ?

—हाँ।

—ये किताब-उताब नहीं पढ़ते। मैंने आपको तुरंत पहचान लिया।

—ओह, अच्छा !

—सुनो, यह देवादिदेव बसु हैं।

—अच्छा !

—जी, हाँ।

महिला बड़ी उत्तेजित थीं, 'ठहरो, शीला को बुला रही हूँ। शीला, ओ शीला ! शीला मेरी सहेली है। जियोलॉजिस्ट।'

शीला पुकारने पर लगभग तीस बरस की लंबी-सी औरत आ पहुँची, बोली, 'आपको मैं पहचानती हूँ।'

—क्या कहीं मुलाक़ात हुई है ?

'बड़ा ताज्जुब है।' भले आदमी की पत्नी बोलीं। 'आपको मैं भी पहचानता हूँ।' लड़का बोला। 'क्या कहीं पहले मुलाक़ात हुई थी ?' लड़की बोली। 'आपने बिलकुल इसी तरह 'झील में वसंत' उपन्यास शुरू किया था।'

—आपको याद है ?

चैन, बड़ा चैन मिला। इनमें उसके प्रति कोई विद्वेष या आक्रोश नहीं है। ये लोग उसे नकार नहीं रहे हैं। तो क्या देवादिदेव का मन-ही-मन घर लौटना शुरू हो गया है ? शायद इसीलिए उसके शरीर, चेहरे और व्यक्तित्व से वह अज्ञात, अनजाना रेडिएशन अब नहीं हो रहा है। इसी

रेडिएशन की अदृश्य उपस्थिति को जानकर अनजान व्यक्ति भिड़ जाता था। इसी रेडिएशन ने सभी को उसका दुश्मन बना दिया था। सब उसे दुश्मन समझते हैं, यह सोच-सोचकर ही देवादिदेव आत्मविश्वास खोता रहता था। उसे डर लगता था, बहुत डर लगता था।

बहुत डर लगता था। आंखों में आत्मविश्वास की कमी स्पष्ट झांक रही होती थी। लगता था कि किसी भी क्षण बाजार में मछली बेचने वाला कह बैठेगा, 'पैसे ले जाइये, मछली लौटा दीजिये, गोसाईं! सभी ने जिसे नकार दिया हो, ऐसे आदमी को मैं मछली नहीं बेचता।'

बहुत डर लगता था। लगता कि यह जैसे हिटलर का जर्मनी हो। देवादिदेव को छोड़कर सभी गेस्टापो हों। सभी उसका पीछा कर रहे हों। ढूंढ़ते फिर रहे हों। चौकन्ने शिकारी की तरह देख रहे हों, कब यह गुप्त बात बता दे यह यहूदी!

कभी लगता कि सम्मानित और सभ्रांत देवादिदेव को नीच और जलील कहते हुए किसी दिन कोई गाड़ी रोकेगा और उस पर थूक देगा। धक्का मारकर चश्मा गिरा देगा। कोई युवक उसका चश्मा चूर-चूर करता हुआ चला जायेगा। बस-स्टॉप पर बस आने पर कोई उसकी टेरीशर्ट पर जलती सिगरेट फेंककर बस में चढ़ जायेगा।

लेकिन इन लोगों की आंखों में कोई शत्रुता नहीं है। ये उसके पाठक हैं। उस पर श्रद्धा करते हैं, उससे स्नेह करते हैं। फैसला नहीं करते। अखबार में जिसका नाम ये हर रोज देखते हैं, सोचते हैं कि वही श्रेष्ठ साहित्यिक है।

ये लोग बारीकी से हिसाब मिलाने नहीं बैठते हैं। ये यह नहीं सोचते कि देश और देश की जनता जब दुखों में मर रही है तो यह उस जोरदार शोर को न सुनकर सपनों की चोटी पर आ बैठा है और पलायनवादी साहित्य लिख रहा है।

ये लोग इस सोच में भी नहीं पड़ते कि देश में दुर्भिक्ष, चमार, हरिजनों की हत्या, दुर्दशा, भुखमरी और बेईमानी फैले होने पर देवादिदेव कैसे यौन-व्यभिचार, अवैध रमण-संबंध, बेजान वामपंथी नायिकाओं पर कलात्मक कहानी लिखता है!

ये लोग भी पलायन की तलाश में हैं। देश और जनता के मर कर जहन्नुम चले जाने पर भी इनके तईं कुछ आता-जाता नहीं। अरे, जेल में कुछ गुंडे-आवारा मर गये तो उससे क्या हुआ ? इन्हें सुखी जीवन के अपने-अपने दायरे में आंखमिचौनी खेलना ही अच्छा लगता है। देवादिदेव के उस मित्र की पत्नी की बात याद आती है, 'फ़लां जगह इतने लड़के मर रहे हैं, इससे क्या हुआ ? अभी तो बाबा, हम सेकेंड शो में सिनेमा देखकर अपने मुहल्ले को लौट सकते हैं।'

देवादिदेव का सहारा, अन्न और आश्रय यही हैं। लेकिन केवल इनकी श्रद्धा से तो काम चलेगा नहीं। औरों की श्रद्धा की भी जरूरत है। उनकी श्रद्धा की जरूरत है, जिनकी श्रद्धा पर लेखक टिका रहता है। उसे उन्हीं विचारशील, न्यायनिष्ठ तेज-तर्रार विचारवान युवकों की श्रद्धा चाहिए। देवादिदेव घर लौट रहा है। घर लौटकर उसे सब-कुछ मिल जायेगा। ईप्सिता का अनुसरण भी। ईप्सिता को भी नहीं लगेगा कि उसका सारा विवाहित जीवन व्यर्थ है।

लड़की जैसे कुछ कह रही थी।

—मुझसे कुछ कहा ?

—जी हां, मैं आपको पहचानती हूं। माने, अपनी मां से मैंने आपकी कहानी खूब सुनी है।

—आपकी मां ? क्या नाम है ?

—आप नहीं पहचानेंगे। मां की छोटी बहन, मेरी छोटी मौसी उज्ज्वला दत्त थी। आपने उन पर एक सुंदर-सी छोटी किताब लिखी थी। अब पहचाना ?

कठोर, कठोर आघात ! अंदर-ही-अंदर जैसे कुछ विदीर्ण हो गया हो। मन में आया कि अभी लड़की को हाथों से मसलकर खत्म कर दे, मार डाले। कभी बहुत दिनों पहले, जवानी में अनचाहे आवेग के प्रभाव में उसने अपनी बड़ी-सी हथेली में एक गौरैया को मसल डाला था।

उज्ज्वला दत्त ! देवादिदेव को उबकाई आने लगी। धुएं से सब तरफ़ अंधेरा हो गया...बम के धुएं से। उसके बाद देवादिदेव को दिखायी पड़ा कि खून से लथपथ उज्ज्वला भाभी लेटी हुई है। उज्ज्वला भाभी मरने के

तेंतीस बरस बाद उठ बैठी है। देवादिदेव की ओर उनकी आँखें हैं। उज्ज्वला भाभी ने विचित्र मायावी आँखें उठाकर पूछा, 'केवल बचपन ही पर लौट सकेगा? मुझे याद नहीं करेगा? मैं भी तो तेरे लौटने की राह में तेरा ही बोया काँटा हूँ।'

देवादिदेव ने लड़की की ओर पीड़ा-भरी आहत आँखों से देखा। अभी तक उसकी आँखों में प्रशंसा, मुग्ध प्रशंसा का भाव था। किंतु देवादिदेव को भीतर-ही-भीतर आत्म-तिरस्कार कचोट रहा था। नहीं, उसे इन लोगों की प्रशंसा नहीं चाहिए। लड़की ने देवादिदेव को बड़ा आघात पहुँचाया था।

लगता था कि देवादिदेव यान्त्रिक आवाज में बोला हो। उसके बाद उठ खड़ा हुआ। बोला, 'मैं जा रहा हूँ।'

सूटकेस लेकर वह उठ खड़ा हुआ। सब लोग उसे देखकर ताज्जुब में थे। देवादिदेव आगे बढ़ गया। दूर बेंच पर जगह न थी। अखबार बिछाकर स्टेशन के फ़र्श पर ही बैठ गया। सिर घुटनों पर टिका लिया।

उज्ज्वला भाभी!

कौन-सा वर्ष था वह? बयालीस, बयालीस, बयालीस। याद है, उस दिन सुबह-सुबह ही देवादिदेव निकल गया था। उन दिनों सुबह से ही सदय विश्वास उसके पीछे लग जाया करता था। आदमी होशियार था। ब्रिटिश कर्मचारियों से उसे ट्रेनिंग मिली थी। ट्राम हो, बस हो, देवादिदेव कभी भी उसे अपने पीछे से झटक न सका।

उन दिनों वह सुबह-शाम लेक पर टहलता था। उस दिन लेक पर ही उससे मुलाकात हुई थी।

—कहिए मिस्टर बोस, अच्छे तो हैं?

—आप!

—अच्छा, पहचान गये, पहचानते हैं न! सब लोग कहते हैं कि आप किसी का चेहरा नहीं भूलते।

—ओह आप! कैसे हैं?

—जैसा आप रखें।

—मैं आपको रखूँगा तभी आप रहेंगे? कह क्या रहे हैं, मोशाय?

यह तो तिलस्मी रहस्य हो गया।

—अरे आप लोग !

—अच्छा, चलूं।

—जा रहे हैं, चले जाइयेगा। मोशाय, जाना तो सभी को है, मैं भी जाऊँगा। लेक पर क्या कोई रहने आता है ? मुझे रिटायर हुए बहुत दिन हो गये। अब आप तो मशहूर आदमी हैं। लड़कों से कहता हूँ कि उस देवता समान आदमी का मैं कभी पीछा किया करता था, ब्रिटिश राज में। अभागी नौकरी थी। क्यों ? लड़कों को उस काम में नहीं लगाया। वे लोग आपके बड़े भक्त हैं, मोशाय !

—अच्छा !

—उसी मकान में हैं ? पुराना-धुराना जैसा भी है, पचास रुपये में ऐसा मकान कुछ भी हो, दो-मंजिला मकान है। सारा आपका है ?

—खूब ख़बर रखते हैं। ऐसा नहीं लगता कि रिटायर हो गये हैं ? मेरी बस आ गयी, चलूं।

—हां, फिर भेंट होगी।

जो भी हो, अजीब आदमी है। देवादिदेव उसे काटकर बस पर चढ़ गया। इस पर वह ज़रा भी अपमानित या विचलित न हुआ। वह अगर देवादिदेव को काटकर बस में चढ़ जाता तो देवादिदेव की उँगलियाँ कांपने लगतीं। थैला हाथ में लिये वह आदमी हँसकर जैसे कुछ बोला हो। लगता था कि सौदा लेकर लौटने की बात कर रहा हो। उसकी नाक पर मस्सा था। दूर से ही साफ़ नजर आने वाला चेहरा लेकर भी शान के साथ सादा वर्दीधारियों का काम करता रहा।

वह बयालीस वर्ष का था। हां, बयालीस। देवादिदेव 'बंगाल का किसान' अख़बार में काम करने के समय से ही मणि प्रामाणिक को पहचानता था। वह किसान फ्रंट पर काम करने वाला पक्का कार्यकर्ता था, कट्टर कांग्रेसी। बाद में रास्ता और विचारधारा जरूर बदल गयी थी। लेकिन बयालीस में मणि प्रामाणिक कांग्रेस कार्यकर्ता था, छिप कर काम करने वाला, अंडरग्राउंड। बाबू लोगों पर विश्वास नहीं करता था। बात-बात में कहता, 'इनके किये कुछ न होगा।'

बयालीस में देवादिदेव के पेट में फोड़ा हुआ था। बहुत बड़ा घाव हो गया था। इसी कारण उन्हें घर में पड़े रहना पड़ता था। उबले आलू, ठंडा भात, मक्खन, ठंडा दूध पीता खाता था। घर में सिर्फ़ बाप और बेटा थे, तीसरा आदमी कोई न था। सुबह-शाम नौकरानी काम करके चली जाती, ब्राह्मणी खाना बनाकर रख जाती। पुराना नौकर गोलोक मिदनापुर का था। मिदनापुर में उन दिनों बड़ी अशान्त स्थिति थी। उन दिनों गोलोक के उसके अपने इलाके तमलुक में ग्राम आज़ादी थी। गोलोक अपने घर चला गया था। बाद में देवादिदेव के सुनने में आया कि उसका बाप और चाचा दोनों ही गोली से मारे गये। गोलोक की माँ और चाची को जीवनभर के लिए पेंशन मिली।

बयालीस का सन्त्रस्त, शंकाकुल और विक्षुब्ध समय। देवादिदेव का मकान ख़ाली था। दुछत्ती कमरा था। फर्श पर लेटे-लेटे खिड़की की झिलमिली से देखने पर पूरी सड़क दिखायी देती थी। शाम से ही कलकत्ता बिना रोशनी का हो जाता। अँधेरे में आने-जाने में सुविधा रहती। सत्य विश्वास को मणिबाबू के बारे में कुछ पता था या नहीं, कौन जाने? लेकिन देवादिदेव के पीछे वह फोड़े की तरह लगा रहता था।

मणिबाबू अंडरग्राउंड थे। बयालीस के अंत में पकड़े गये। बयालीस के अगस्त से देवादिदेव का उज्ज्वला भाभी के यहाँ आना-जाना बहुत बढ़ गया था। वह उनकी देख-रेख करता था। मणिबाबू ने एक बार बताया था कि उज्ज्वला उनके साथ अंडरग्राउंड होने के लिए तैयार थी ...। रेल की पटरियाँ उखाड़ने, टेलीग्राफ़ के तार काटने को भी तैयार थी। लेकिन मणिबाबू ने उसे घर में ही बने रहने के लिए कह रखा था। इसी कारण उज्ज्वला भाभी घर ही में बनी हुई थी। उसके जीवन में सब-कुछ मणिबाबू ही थे। मणिबाबू के निराश्रय जीवन में योग देने के लिए, वह बेटे-बेटियों को आराम से माँ-बाप के पास रख कर कलकत्ता में भवानीपुर की एक अँधेरी गली के छोटे-से बैरकनुमा मकान के एक-मंजिले पर दो कमरों में रहने लगा था।

उस कमरे में धूप नहीं आती थी। कमरे को उज्ज्वला भाभी की हँसी उज्ज्वल और प्रकाशित रखती थी। मणिबाबू बाहर-बाहर ही फिरते

रहते थे। उनके ज़िले के कार्यकर्ता कलकत्ता आने पर मणिबाबू के घर पर ही ठहरते थे। उज्ज्वला भाभी सबके लिए भात पकातीं, चाय बनातीं। उनके घर में कार्पोरेशन का नल लगा हुआ था। लेकिन नल में हर समय जल न रहता। 'भात चढ़ा दिया है, देखना तो देबू,' कहकर उज्ज्वल भाभी पानी भरने के लिए आँगन में चली जातीं। बाल्टी में भरकर पानी ला-लाकर वे ड्रम-टीन-कलसी-घड़ा—सभी को भर रखतीं। कहतीं, 'नल का कोई भरोसा है? टाइम, बे-टाइम आ जाता है, तभी नहा लूँगी।'

उज्ज्वला भाभी को कोई शौक़ न था। फ़ैशन में भी उन्हें दिलचस्पी नहीं थी। सिर्फ़ साबुन से बहुत देर तक रगड़-रगड़कर नहाना अच्छा लगता था।

भाभी का स्वभाव शांत, बहुत सहनशील था। खुशी से हमेशा खिली रहती थीं। इतने सुख का स्रोत होने पर भी मणिबाबू क्यों चिढ़कर बड़-बड़ाया करते हैं, यह सोचकर देवादिदेव को आश्चर्य होता। मणिबाबू कहते, 'देबू, तुम उसकी हँसी ही देखते हो, मिजाज नहीं देखते। कैसा सख़्त मिजाज़ है!'

भाभी हँसतीं। उनके हँसने पर उनकी आँखें भी हँसतीं। गहरी काली-काली आँखें चमकने लगतीं, जैसे कि गहरे पोखरे के काले पानी के नीचे से लहरें उठ रही हों। पलकें झुक जातीं। बड़ी-बड़ी आँखों पर घनी और काली पलकें थीं। लगता कि तूलिका से बनी हुई हों। उन आँखों के अलावा उज्ज्वला भाभी के चेहरे में और कुछ विशेष न था। साँवली देह, दुबला-सा शरीर, गले में झालरदार ब्लाउज़, टाट की तरह खद्दर की साड़ी पहनतीं। ब्लाउज कभी-कभी राख के रंग का होता। बरसात के दिनों में भाभी रसोई में ही डोरी बाँधकर चूल्हे की गर्मी में धोती-ब्लाउज़ सूखने के लिए डाल देती थीं। वरना इतनी मोटी चीज सूखती ही नहीं।

मणिबाबू कहते—'उन आँखों को दिखाकर ही धोखे में डाल दिया था।'

—किसे? तुम्हें?

—मेरे फूफा को।

मणिबाबू के अभिभावक उनके फूफाजी ही थे। उन्होंने उनकी शादी करायी थी। भाभी के पिता की हालत अच्छी थी, देवादिदेव को

किसी पुरुष को, पुरुष ही नहीं मानती थीं। अगस्त-क्रांति के दौर में देवादिदेव ने विशेष रूप से जाना कि मणिबाबू से संबंधित सभी कुछ उसके लिए अत्यन्त पवित्र है। उस दिन की बात याद आती है। आले में एक बड़ा-सा ब्रश रखा था। देवादिदेव ने उसे लिया और उसके दस्ते से अपनी पीठ खुजलाने लगा। भाभी ने झट-से ब्रश उसके हाथ से ले लिया था। एक पंखा देकर बोली, 'इसके दस्ते से पीठ खुजला लो।'

—वह भी तो ठीक था।

—नहीं बाबू! घर छोड़ने के पहले तुम्हारे दादा मुझे वह ब्रश दे गये थे। कहा था, 'टूनी, मैंने यह नारे डबल लाइन में लिख रखे हैं—अँग्रेजो! भारत छोड़ो। क्विट इंडिया। नेताओं को आजाद करो। तुम अक्षरों के बीच आलता भर देना।' ब्रश मैंने इसीलिए उठाकर रख दिया है।

—भाभी! वह पोस्टर क्या तुमने घर में रखे हैं?

—और कहाँ रखूं?

—कहाँ?

—रसोई के आले मे। डिब्बों और घड़ों के पीछे।

—चलो तो देखें।

देखकर देवादिदेव ने कहा था—'चार-पाँच तो हैं, जला डालो।'

—पचास थे।

—बाक़ी के कहाँ गये?

—बीच-बीच में ले जाते हैं।

—कौन?

—ननी।

ननीबाबू पुलिस के साथ मेलजोल रखते हैं, यह संदेह देवादिदेव को ही नहीं, औरों को भी था। ननीबाबू, मणिबाबू की जान-पहचान के थे। पहले अकसर आते थे, लेकिन अगस्त-आंदोलन शुरू होने के समय से नहीं आते। लेकिन भाभी का कहना था कि आते-जाते रहते हैं।

देवादिदेव ने कहा था—'मैं मणिबाबू से पूछूंगा। इससे पहले ननीबाबू को कोई चीज मत देना, भाभी!'

देवादिदेव मणिबाबू की बीच-बीच में मदद करता रहता था। भाभी

ने उस समय देवादिदेव की बात मान ली। भाभी बोली, 'सो पूछ लेना।'

बरामदे के खंभे से टिकी भाभी बैठी थीं। दूर कहीं षष्ठी पूजा का ढोल बज रहा था। भाभी जिस गली में रहती थी, वहाँ की जमीन-हवा में नाली में सड़ती मछली की आँतें और फंदे में फँसकर मरी बिल्ली की दुर्गंध फैली हुई थी। क्वार की हवा में उस दुर्गंध ने भाभी की अँधेरी कोठरी को भर दिया था।

देवादिदेव बोला—'खाना नहीं बनाओगी, भाभी?'

—आज मंगलवार है।

—कुछ खाओगी नहीं?

—सत्तू-गुड़ खाऊँगी।

सहसा भाभी ने अपनी विस्मय-भरी आँखें देवादिदेव की ओर उठाकर कहा, 'वह कितने दिन भागते रहेंगे, देबू? उनके बाद उसका क्या होगा? कब तक मैं उनके लिए बैठी रहूँगी?'

—एक बार मिलने चलोगी?

—नहीं देबू, उन्हें वचन दिया है! फिर पुलिस के लोग तुम पर नजर रखते हैं, मुझ पर भी। मेरे तुम्हारे साथ जाने पर सीधे तुम्हारे दादा को पकड़ लेंगे।

—हाँ, यह तो सच है।

—वह कैसे हैं, देबू? बहुत कमजोर हो गये हैं?

—नहीं, बहुत कमजोर नहीं हुए हैं।

—होते भी तो मैं क्या कर लेती?

उसके बाद प्यार से भरी आँखों से बहुत गहरे में देखती हुई भाभी बोलीं, 'पूजा का ढोल सुनकर मन कैसा हो जाता है! उनके लिए पूजा भी तो नहीं करती हूँ। उन्होंने मना कर रखा है।'

—क्यों?

—भारतमाता के अलावा किसी को भी पूजा करने की मनाही है। एक ही जिद्दी आदमी है। गँवार की जिद ठहरी। समझ लो कि जो बात एक बार दिमाग में घुस गयी तो घुस गयी। सिंदूर दासता की निशानी है, नहीं लगाने देंगे। मुझे देस में अपने मकान में रख और यहीं सब-कुछ कर सुन,

स्वयं जेल चले गये। मैं सब धो-पोंछकर बैठ गयी। देस में शोर मच गया। सभी ने मुझे ही भला-बुरा कहा। मैंने कह दिया, मैं कुछ नहीं जानती। वह आकर लगाने को कहेंगे तो लगाऊँगी।

—अब तो लगाती हो!

—लगाना पड़ा। फुफिया ससुर ने खाना-पीना छोड़ दिया। तीन दिन तक पड़े रहे। तब मुझे लगा कि मेरे सिर बड़ा पाप चढ़ जायेगा। उनके लौटने पर लगा लिया। माँ रे माँ! पता है कि जेल से लौटकर क्या कहा था उन्होंने? कहा, तीन-तीन दिन तक खाना नहीं खाया? खाता था। लेकिन अन्न नहीं खाता था, चिउड़ा-खीर और केला खाता था। तुम तो बेवकूफ़ हो।

—मंगलवार का व्रत करती हो?

—झगड़ा करके करती हूँ। यह तो व्रत है, देवता के सामने बैठकर तो पूजा नहीं करती। वे कहते हैं, यह सब बेवकूफ़ों के काम हैं।

ननीबाबू की बात मन में कचोट रही थी। देवादिदेव को याद है, पिछली बार मणिबाबू से मिला था तो वह सन् 42 की जागरी पूजा[1] की रात थी। अंतिम भेंट थी।

मणिबाबू बोले—'देबू, ननी को घर में मत घुसने देना। वह भेदिया है। पहले तो कभी नहीं आता था। अब क्यों चक्कर लगाता है? उज्ज्वला यह बात नहीं समझती है।

—क्यों?

मणिबाबू एक मिनट तक कुछ सोचते रहे। उसके बाद बोले, 'सूखी घास में पैक कर बिस्कुट के बड़े डिब्बे में दुलाल दो बम रख गया है। ननी इसीलिए आता है कि उज्ज्वला उन्हें नष्ट कर दे।'

—किस तरह से?

—मौक़ा पाकर कहीं फेंक आये।

—भाभी?

यह सोचकर देवादिदेव को कष्ट हुआ था कि उज्ज्वला भाभी उन

1. आश्विन मास की पूर्णिमा।

दोनों बमों को कहीं नष्ट करने जाये। भाभी बहुत ही मस्त क़िस्म की औरत थीं। उनका सभी कुछ प्यार पर टिका हुआ था। लेकिन मणिबाबू ने कहा था, 'उज्ज्वला कर सकती है। कह देना, मैंने कहा है।'

देवादिदेव ने भाभी से सभी बातें कह दीं। भाभी घबरायीं नहीं। मोटे से कपड़े धो रही थीं। कपड़ों को पीटते-पीटते बोलीं, 'कृष्ण-पक्ष आने दो। अभी तो ब्लैक-आउट में भी राह-बाट खूब दिखायी पड़ते हैं।'

कृष्णपक्ष के अँधेरे के लिए कैसी प्रतीक्षा थी! देवादिदेव भाभी के लिए परेशानी, आतंक से मरा जा रहा था। लेकिन वह अविचलित और निर्विकार थीं। जिस दिन वह मनचाही प्रतीक्षित अँधेरी रात आयी थी, उसी दिन भाभी ने कहा था, 'चलो, पानी में फेंक आयें।'

—कहाँ?

—चलो न। बडेल गेट के उस पार निर्जन में एक गड्ढा है। पिंटू के घर जाते वक़्त देखा था।

—चलो।

—तुम मुझे अकेला नहीं छोड़ोगे। तुम भी साथ चलोगे!

—चलूँगा।

बातचीत के बीच में भाभी पानी ला-लाकर टीन के ड्रम में भर रही थीं। गीले कपड़ों में देवादिदेव के आगे आ खड़ी हुईं। मुसकराती हुई, अपनी विचित्र आँखें मटकाकर बोलीं, 'डर किस बात का है जी? तुम्हें इतना सोच क्यों हो रहा है? जिसे सोच होना चाहिए, वह तो फ़िकर कर नहीं रही है। तुम सोच-सोचकर क्यों मरे जा रहे हो?'

—वह न सोचे तो...।

—इसमें तुम्हारा क्या आता-जाता है?

भाभी ने जैसे अपनी चमकती आँखों से देवादिदेव के अन्तर की सचाई जान ली थी, उस अन्तर की बात जान ली थी जिसके अस्तित्व का देवादिदेव को भी पता न था। कहा था, 'शादी कर लो ना। बूढ़े बाप की भी देखभाल हो जायेगी, तुम्हारा भी एक ठिकाना हो जायेगा।'

—तुम भी तो शादी न करने को कहती थीं?

—हाँ। शादी कर लेने पर तमाम बातें सुनती हूँ। फिर तुम तो पढ़ी-

लिखी लड़की से शादी करोगे। मुझ जैसी लड़की कहाँ मिलेगी ?

उस दिन उज्ज्वला भाभी आश्चर्यजनक, रहस्यमय लगी थीं। जैसे भाभी के अंदर प्रकाश जल रहा हो। देवादिदेव के समान आकर्षक पुरुष की निकटता से उस प्रकाश की एक किरण भी कभी नहीं फूटी। मणि-बाबू के हुक्म से उनका काम कर रही है, उसी आनन्द से भाभी दमक रही थीं।

फिर वे एक साथ घर से निकले। भाभी दरवाजा बंद करके ऊपरी मंजिल में चाबी रख आयीं। वे बस के बजाय पैदल ही बंडेल गेट तक गये। भाभी बोलीं, 'देवू ! हाथों में पसीना आ रहा है। बक्सा खोल। एक तुम लो, एक मैं लेती हूँ। टीन हाथ से फिसल गया तो मुसीबत होगी।'

अँधेरा। अँधेरा रास्ता, अँधेरी रात। वे पैदल ही चले जा रहे थे। चलते जा रहे थे। लाइन के पास तक आ गये। भाभी के मुंह से 'अरे' निकला। पांव में शायद ठोकर लग गयी थी। चप्पल की आदत न होने से पैर घसीट-घसीटकर चल रही थीं। अचानक हलकी-सी गरज हुई—'हाल्ट !'

वे लोग ठिठककर रुक गये।

लाइन के उस पार हेल्मेट पहने क़तार-के-क़तार सिर ऊपर उठ आये। रेल-पटरियों की निगरानी हो रही होगी—यह बात भाभी को नहीं, देवादिदेव को पता होनी चाहिए थी।

टॉर्च की रोशनी भाभी पर पड़ रही थी।

—देवू, पुलिस...मिलिटरी !

—हाल्ट, नहीं तो गोली मार दूंगा।

सामने हथियारबंद संतरी। पसीने-भरी हथेली में बम का स्पर्श। अँधेरी रात। देवादिदेव के मन और शरीर पर ये सभी बातें हावी थीं। मन ने उससे कुछ नहीं कहा। जो करना था, हाथ कर रहे थे। उसने अपने हाथों में बम दबा रखा। पसीने से हथेली चिकनी हो रही थी। हाथ आगे बढ़ा, ऊपर उठा। उज्ज्वला भाभी को भी बम तुरंत फेंकना होगा। हलचल मच जायेगी, वे भाग निकलेंगे।

शहीद हो गयीं।

स्वाधीनता के बाद तो निश्चय ही शहीद का दर्जा मिला था उन्हें।

सारे प्रश्न और संदेह केवल उस अकेले मन में ही थे।

देवादिदेव ने सिर उठाया।

मन में कहीं गहरे में अपराध-भाव था, गहरा अपराध-भाव। अन्यथा अवचेतन ने गहराइयों में उज्ज्वला भाभी की स्मृति सहेज कर क्यों रख रखी थी ?

क्यों था यह अपराध-भाव ? क्या वह अपने हाथों को रोक नहीं सका था, इसीलिए ? बयालीस की उस दीपकहीन संध्या में उसके हाथों ने बम को क्यों नहीं नियंत्रित किया था ? उसने बम-सहित अपने हाथों को नियंत्रित क्यों नहीं किया था ? क्या इसीलिए यह अपराध-भाव था ?

उज्ज्वला भाभी की आँखें आश्चर्यजनक रूप से मायावी रहस्यमयी आँखें थीं। उनकी हँसी निर्मल थी। उनके चित्र के गिर्द फूलों की माला। मणिबाबू की घुटी-घुटी रुलाई। 'मोरे देखे बिना नाही रहि सकत रही, आज हमें केकरे हाथे छोड़ गइल ?'

उज्ज्वला भाभी रहतीं तो कहतीं, 'इनके ढंग देख रहे हो, देवू ?'

आज उज्ज्वला भाभी की स्मृति को दूर हटाना है। घर लौटने से पहले एक काँटा और हटा देना है। उस स्मृति का सामना नहीं कर रहा था, क्या मन इसीलिए भाग रहा था ? अनेक बातें, अनेक घटनाएँ। बलवंत की याद। उज्ज्वला भाभी की याद। इन सबसे दूर चले जाने की इच्छा थी।

उसने अपने चेतन में नही, अवचेतन में, धीरे-धीरे दूसरी तरह से अपनी इमेज बड़ी कर ली थी। धीरे-धीरे वह बुरा बनता गया। होते-होते आज इस स्थिति तक पहुँच गया है। ईप्सिता ने उसके पतन की हर अवस्था को देखा था। ईप्सिता को लगता था कि प्रसिद्ध लेखक देवादिदेव से संबंध होने से उसका सारा जीवन बड़ी-सी बरबादी बनकर रह गया है।

—सुन रहे हैं ?

शीला आकर खड़ी है।

—कहिये।

—छोटी मौसी का जिक्र करते ही आप अचानक इस तरह क्यों चले आये ? कब से सिर झुकाये बैठे हैं ! मुझे बहुत बुरा लग रहा है।

देवादिदेव ने उस स्त्री की ओर स्वच्छ आँखों से देखा। उसे गौरैया की तरह मसल डालने की तबीयत न हुई। लेकिन वह घटना कहाँ हुई थी ?

—नहीं, बुरा लगने का कोई कारण नहीं है। बैठिये न ! नीचे बैठिये।

लड़की बैठ गयी।

—उज्ज्वला भाभी आपकी मौसी लगती थीं ?

—हाँ।

—उसके लड़के-लड़कियाँ कहाँ हैं ?

—मिताली और जया की शादी हो गयी है। सोना और बाबुल नौकरी कर रहे हैं।

—उनका मामा घर पर ही था ?

—हाँ, मौसी मर गयी। मौसा को जेल से निकलने के बाद कैंसर हो गया। इस बीच मौसा, बाबा, नाना सभी मर गये। वे मेरी माँ के पास रहते थे।

—वहीं लिखना-पढ़ना हुआ ?

—हाँ, मेरे पिता की लोहे दूकान थी। अभी भी है। कोई मुश्किल नहीं हुई। जानते हैं, सोना और बाबुल बहुत बदल गये हैं। पिता नहीं हैं। माँ उन्हें देखना चाहती हैं। इस कलकत्ता में ही रहती है, पर हमारे घर बिलकुल नहीं आते।

—भाभी के पिता क्या करते हैं ?

—खड़गपुर में ठेकेदार थे।

—मणिबाबू के साथ भाभी की शादी क्यों की थी ? मणिबाबू तो राजनीति करते थे।

—बुआ की जायदाद मिली थी, इसीलिए मौसा के पास काफी ज़मीन-जायदाद थी। काली होने के कारण मौसी की शादी नहीं हो रही थी। दादा जानते थे कि, फूफा के मरते ही सारी ज़मीन-जायदाद बेचकर रुपये फंड में दे दिये जायेंगे। फिर मौसा के सारे घरवाले स्वदेशी आंदोलन में

थे। इससे समाज में बड़ा सम्मान था।

देवादिदेव को मणिबाबू के शहर वाले घर की याद आयी। दो कमरे, टीन की रसोई, टीन-छता स्नानघर, उठौआ पाखाना।

शीला बोली—'मौसी भी तो कम नहीं थीं। दादा ने पचास तोले सोने दिया था। सभी आंदोलन में डाला।'

शीला ने कुछ देर और बातें कीं। उसके बाद उठ गयी। वे लोग कल सवेरे की बस से काश्मीर जायेंगे।

ट्रेन आयी, देवादिदेव ने शीला को नमस्कार किया। गाड़ी पर बैठ गया।

ट्रेन ठीक वक़्त पर चल दी।

थ्री टायर में नीचे की बर्थ पर बहुत घुटा-घुटा-सा लगता है। नींद में भी सांस फूलने लगती है। मन बहुत ही विचलित था। देवादिदेव स्वप्न देख रहा था, दुःस्वप्न। आजकल उसे पहले जैसे सपने नहीं दिखायी देते।

शायद रात का भोजन भी शरीर को माफ़िक नहीं आया। थाली के खाने में मिर्च-मसाला ज़्यादा होता है। भात, रोटी थोड़ी-सी दाल खायी थी। याद आया कि आते समय ईप्सिता ने खाना साथ बांध दिया था। देवादिदेव ने जिस तरह से प्रोग्राम बनाया था, खाना उसे पठानकोट में मिलना था। वह तो हुआ नहीं। टेलीग्राम पाते ही चलना पड़ा। ऐसी क्या बात हो गयी कि अचानक तार करना पड़ गया?

क्या तपोधन या धीमान अचानक बीमार पड़ गये हैं? क्या सुमन को कुछ हो गया है? देवादिदेव अपने छोटे लड़के सुमन को नहीं पहचानता। लम्बे बाल, गंभीर चेहरा, रंगीन कपड़े, भारी सैंडल। दिन-रात पढ़ता रहता। नेशनल स्कॉलरशिप पा जाने पर दिल्ली पढ़ने जायेगा।

पिता से उसकी छह-छह महीनों में छह बातें भी हो पाती हैं या नहीं, इसमें भी संदेह है। लड़के सेंट जेवियर्स में पढ़े थे। इन लड़कों की वजह से बहुत शर्मिंदगी उठानी पड़ी थी। अंग्रेज़ी ऑनर्स और बँगला में

एम० ए० परीक्षा देने के प्रस्ताव पर उसमें बड़ा उत्साह था। उच्चशिक्षा का माध्यम मातृभाषा बँगला हो, इसके लिए यह बहुत समय से लगा हुआ था।

ईप्सिता ने कहा था—नौकरी के बाद मैं चार-चार ट्यूशन क्यों करती हूँ? तुम्हें नौकरी-औकरी की जरूरत नहीं पड़ी, अंग्रेजी पर जोर देने की जरूरत नहीं हुई। तुम जीनियस हो, प्रतिभाशाली हो। वे जीनियस नहीं हैं।

—मेरे बेटे उन स्कूलों में पढ़ेंगे?

—तुम्हारे कौन-से नामी दोस्त के लड़के-लड़कियाँ बँगला स्कूल में पढ़ते हैं?

—मैं क्या उनकी तरह हूँ?

—नहीं हो, इसका सबूत भी तो नहीं दिया।

गृहयुद्ध में देवादिदेव ने बराबर हार मानी है। कलकत्ता में उसका रहना ही कितना होता है! बराबर घूमता ही तो रहता है। लड़के क्या पढ़ेंगे, कहाँ पढ़ेंगे—इस सब बातों का भार उठाने में अपने को असमर्थ जानकर ही देवादिदेव चुप हो जाता। तीनों लड़के पढ़ने-लिखने में अच्छे थे। लेकिन किसी ने भी रचनात्मक दृष्टि से एक अक्षर तक नहीं लिखा। किसी की भी ललितकला या संगीत में रुचि नहीं थी। इस बात का उसे बहुत दुख था। नौकरी मिल जाये, इसी में वे खुश थे।

लेकिन किसका क्या बना?

यही बात मन में बैठ गयी थी, शायद इसीलिए देवादिदेव जागते-सोते वही सपने देखता।

हाथ में एक गौरैया है। देवादिदेव का हाथ स्थिर है, वह बिछी हुई चटाई पर लेटा है। गौरैया को उसने अपनी बड़ी-सी हथेली में मसल दिया है। तभी जैसे कोई रो पड़ा हो।

देवादिदेव उठ बैठा। सिर झुकाये उठा। एकबार बाथरूम हो आया। कण्डक्टर गार्ड किसी के साथ बैठा ताश खेल रहा था। देवादिदेव लोगों के सामान को उलाँघता हुआ, पैसेज में से होता हुआ धीरे-धीरे अपनी सीट पर लौट आया। झुककर सिर नीचा कर सीट में घुसकर लेट गया।

सपना उससे घर लौटने को कह रहा था। पतन या असफलता या मार्ग छोड़कर दूसरे मार्ग पर क़दम रखने के पीछे एक और भी स्मृति थी।

लेटे-लेटे ही उसने सिगरेट सुलगायी। हृदय के भीतर कहीं गहरे में छिपा सभी कुछ दिखायी दे रहा था। बहुत-सी स्मृतियाँ अवचेतन में बंद और क़ैद थीं। बलवंत की याद आते ही दरवाजा झटके से खुल गया था।

अमनाटोकरी ! हाँ, अमनाटोकरी का जंगल था। तिहैया चल रहा था। मोहित-दा ने कहा था, 'सत्यशरण जा सकता था, लेकिन जा नहीं पा रहा है, उसके पिता बीमार हैं।'

उस समय देश आज़ाद नहीं हुआ था। आजादी आयेगी, कहकर आज़ादी चल पड़ी थी। देवादिदेव पहले जलपाईगुड़ी ही गया था। हारूराय के घर पर टिका था। जाने की बात थी पुलकबाबू के साथ। पुलकबाबू कब कहाँ रहते हैं, कोई नहीं जानता था। बरसात खूब हो रही थी। करला नदी ने किनारे तोड़ दिये थे।

हारूराय के घर पर वह दो दिन रहा। वर्षा रुक गयी। रात में पुलक-बाबू आये। उसी रात को रवाना होना पड़ा। 'बहुत अंदर जाना होगा,' पुलक बाबू बोले, 'नोटबुक मत लेना। जो कुछ नोट करना हो, आँखों से देखकर मन में नोट करो। बाद में लिखियेगा। मुझे पहला मसौदा भेज दीजियेगा। चैक कर दूंगा।'

बात सुनकर देवादिदेव चिढ़ गया था। लेकिन कुछ बोला नहीं। पुलकबाबू की बात पर कोई कुछ नहीं कहता था। वह आदमी तिभागे के पीछे पड़ा था। उसके कहने पर हजारों लोग इकट्ठा हो जाते थे। उस पर बहुत ही विश्वास था लोगों का। संथाल भूईंदास पहरा देते रहते थे।

उस समय भी पुलकबाबू के साथ दो संथाल थे। वे दोनों पुलकबाबू के अलावा किसी दूसरे से बात नहीं करते थे। उनके सिर पर पत्तों का बना छाता था, पुलकबाबू के सिर पर भी वही था। उनके पैर नंगे थे, बदन पर तिरछे डोरिये की कमीज, नीची धोती। पुलकबाबू भी उसी वेष-भूषा में थे। पुलक बाबू की कमर में बँधी छोटी थैली में रखी टीन की डिबिया में चूना था।

पुलकबाबू के कहने पर देवादिदेव ने रबड़ के जूते पहन लिये, सिर पर रबड़ की टोपी लगा ली। बदन पर बरसाती पहन ली। यह सब सामान डिक्कीबन्द में रखा था। वे लोग तिस्ता के किनारे-किनारे चल रहे थे। नदी के किनारे लाल निशान था। पानी ने खतरे का निशान पार कर लिया था। एक खास जगह आकर कल्लोलिनी तिस्ता के सामने खड़े होकर पुलकबाबू ने कहा—'पैदल पार होंगे।'

—पैदल ?

अविश्वसनीय लग रहा था। थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद अनिश्चितों से टीले की तरह ऊँची पानी की दीवार उठकर आती थी, चली जाती थी। फिर नीची हो जाती थी, फिर पानी की दीवार बनती थी।

आकाश में तारे थे, एकादशी का चंद्रमा था। शुक्लपक्ष था। दूर आकाश में क्षीण बंकिम चंद्रमा चमक रहा था। पुलकबाबू बोले—'एक ही जगह है, जहाँ से पार हुआ जा सकता है। एक-दूसरे के हाथ पकड़ लीजिये।'

—किन्तु...।

—मैं चला। कोई डर नहीं है।

—मुझे तैरना नहीं आता है।

—तैरना आता भी तो बरसात की तिस्ता में क्या कर लेते ? सुना नहीं है, जंगल से बाघ-गैंडे बहे चले आते हैं ?

वे हाथ में हाथ पकड़कर नदी में उतरे थे। पानी की दीवार के आने पर समुद्र-स्नान के नियम का सहारा लेकर उसमें डूब जाते थे। सपाल और पुलकबाबू गड़ी हुई लाठी बालू में धँसाकर और झुककर जोर सँभाल रहे थे। लेकिन पानी की दीवार के परे चले जाने पर पानी छाती तक ही था। एक जगह नदी का तल बहुत ऊँचा था। सपाल बता रहे थे 'चेत कर चल और थम कर चल!' दो स्थानीय नदियाँ थीं, तेज बहाव वाली।

तिस्ता के उस पार ऊपर से खुलने वाली ऊँची-सी पुराने जमाने की गाड़ी खड़ी थी। जो आदमी उसे चला रहा था, उसे देवादिदेव ने पिछले दिन हाल्दराय के घर देखा था। गाड़ी ने उन्हें सवेरे से लगभग चहारबाड़ि पहुँचा दिया।

चहारखूड़ि जंगल की हद पर था। चहारखूड़ि में वे लोग दिन-भर एक दूकानदार के घर ठहरे। धान के ढेर के पास दो मकान बने हुए थे। ऊपर टोप की तरह का छाजन था। ढेर देखकर लगता था कि किसी राक्षस वर के मौर को लकड़ी की खूँटी पर किसी ने रख दिया है। मचान के नीचे धान था। मचान लकड़ी का था। बीच में ख़ाली था। सीढ़ी पर ख़ाली जगह से वे ऊपर के मचान पर चढ़े। दिन-भर वहीं रहे।

ग्यारह बजे जोरों की वर्षा हुई। पुलकबाबू बोले—'अब चार-पांच दिन चलेगी।'

बरसात चलती रही। सिरों पर छाता लगाकर एक-एक कर वे नीचे उतरे, बांस के झुरमुट में निपटे और गढ़ैया में हाथ-पांव धो आये। फिर दूकानदार की रसोई में बैठकर भात खाया। दूकानदार की सूखे पीले चेहरे वाली आसन्नप्रसवा पत्नी ने मिट्टी की हँड़िया में दाल पकायी थी, अरबी के पत्तों की अगली नोकें पीसकर सरसों के तेल की कड़ाही में तल दी थी। पुलकबाबू ने मांगकर खायीं। बोले—'मिर्च क्यों नहीं डाली ?'

—बाबू खायेंगे !

—पुलिस की गाड़ी कैसे चक्कर लगा रही है ?

—बहुत। लेकिन हाथियों का झुंड इधर निकल आया है। इसीलिए साल से पुलिस को इतना चक्कर लगाते नहीं देखा। झुंड में ढेरों हाथी थे।

—देखे थे ?

—चलने की आवाज सुनी थी।

—हः ! हाथियों का झुंड।

दूकानदार बोला--'हां बाबू ! हाथी उतरे थे।'

पुलकबाबू दूकानदार की पत्नी से बोले—'मचान का धान खेत में आयेगा तो तुझे पकड़ लेंगे।'

पत्नी हँसने लगी। पुलकबाबू भी हँसे। वही हँसी। इसके बाद देवादि-ने पुलकबाबू को एक बार भी हँसते नहीं देखा।

दिन-भर बारिश का शोर सुनते-सुनते देवादिदेव अपने को बहुत

असहाय और विपन्न महसूस कर रहा था। प्रकृति का यह बेरोक और वन्य रूप इसके पहले उसने नहीं देखा था। इसीलिए अच्छा भी लग रहा था।

रात को वे आमनाटोकरी के जंगल में घुसे। घुसने से पहले पुलकबाबू ने कहा था, 'जंगल के उस पार, तिस्ता के उस पार मैदान है। वहाँ जमाव हो रहा है। जंगल में चलते समय आपस में जरा भी नहीं बोलेंगे।'

—क्यों, पुलिस है ?

—जंगल में जानवर है। बरसात में वे भी घूम-फिरकर बड़े पेड़ों का आश्रय खोजते हैं। पुलिस तो जीप के रास्ते से जाती है। जंगलों में जीप नहीं चलती।

—जानवर !

—हाँ। और सुनिये, पैरों में जोंकें चिपक जायेंगी। चलते समय पैरों की ओर मत देखियेगा, डर जायेंगे। छुड़ायेंगे भी नहीं उन्हें। बाद में छुड़ाकर पैरों में चूना लगा दूंगा। सयाल कह रहे थे—हाँ रे, इक्कल है या चला गया ?

—जायेगा कहाँ ? घूम रहा है।

—इक्कल क्या, पुलकबाबू ?

—नर हाथी को झुंड से अलग कर देने पर वह इक्कल हो जाता है। यह बुड्ढा होता है और इसके दाँत होते हैं। बहुत दिनों तक घूमता-फिरता रहता है।

आमनाटोकरी सुरक्षित वन है। उत्तरी बंगाल का भयानक, हिंस्र, जहरीला जंगल। चारों ओर बड़े-बड़े पेड़। छोटे पेड़ भी हैं। धरती दिखायी नहीं पड़ती। वर्षा के जल से खरपतवार ने फैलकर सब हरा-ही हरा कर दिया है। एक विचित्र ढंग से लताएँ इस पेड़ से उस पेड़ पर चढ़कर जंगलों जाल-से बुन देती हैं। पुलकबाबू और सयाल छोटे-से हँसुए से बेलों को काटते हुए आगे बढ़ रहे थे। यह जंगल देखकर 'लौटा दो वह अरण्य' कहना संभव नहीं था। यह जंगल हिंस्र प्रकृति का स्वतंत्र राज्य है, इंसान से इसे दुश्मनी है।

संथाल लोग 'ख्-खो: ख्-खो:' बोलते हुए जानवरों की-सी आवाज़ें कर रहे थे। पेड़ों की डालें काटकर उनसे पैरों के पास की खरपतवार पीट रहे थे। देवादिदेव ने जिज्ञासु दृष्टि से पुलकबाबू की ओर देखा। पुलकबाबू धीमी आवाज़ में बोले, 'सांपों को भगा रहे हैं।'

'सांप' सुनते ही देवादिदेव बहुत डर गया। वह सांप से बहुत डरता था। सँपेरों के नाचने वाले सांप, चिड़ियाघर के काँच के पिंजड़ों में बंद सांपों तक को वह नहीं देख सकता था।

—क्या सांप हैं ?

पुलकबाबू ने जवाब नहीं दिया। वे लोग सहसा एक जगह पहुँच गये। वहां एक पगडंडी थी। पगडंडी देखकर देवादिदेव की जान में जान आयी। वह उस तरफ़ बढ़ा। पुलकबाबू ने उसका हाथ थाम लिया।

—मैं इस पगडंडी पर चलूंगा।

—नहीं।

दोनों संथाल उसके आगे-पीछे हो गये। वह क्या क़ैदी है ! वर्षा हो रही थी। ख़ूब हो रही थी। बरसाती से, टोपी से पानी बह रहा था। पुलकबाबू के बदन पर से पानी बह रहा था। पुलकबाबू बोल नहीं रहे थे। उसकी तरफ़ देखा।

—इस राह से चलिये।

पुलकबाबू ने धीरे से कहा—'सत्यशरण आया नहीं, आप आये। आप इस समय हमारी हिफ़ाज़त में हैं। आपको मेरी बात माननी पड़ेगी। इस बेल्ट में जलपाईगुड़ी पहुँचा देने तक आपकी ज़िम्मेदारी हम पर है।'

देवादिदेव को रोना आ रहा था। बेबसी साल रही थी। वह फिर जंगल की तरफ़ चला। उसके पीछे-पीछे चल रहे संथाल फिर आगे आ गये। फुसफुसाकर बोले—'साले, गुयलकांड़ा बेल की जड़ नहीं मरती। उसी दिन तो काटी थी।'

बरसात हो रही थी, लगातार हुई जा रही थी। धार बनकर पड़ रही थी, बिना रुके। पेड़ के पत्तों पर वर्षा की धार की पट-पट आवाज़ हो रही थी। जैसे ड्रम पीटे जा रहे हों—कुछ दबी आवाज में, मानो पतले डंडे की चोट हो। अब वे बांस के वन में से होकर जा रहे थे। वह हाथियों

की प्रिय विहारभूमि थी। हाथी बाँस के मुलायम पत्ते और डालों को बहुत पसंद करते हैं। वर्षा से दृष्टि धुंधली हो रही थी। देवादिदेव कल्पना में वर्षा की झालर के उस पार एक बुड्ढे दाँत वाले इकल को देख रहा है। गुयालबाँझा लता की हर शाखा भयानक विषधर लगती थी।

पुलकबाबू कुछ नहीं बोल रहे थे। यहाँ कोई बात न करने लगे, इसलिए वे मशालों के आगे भी चले जाते। दूसरे सथाल के हाथ से डाल ले लेते हैं। अब ये तीनों ही 'ग्‌-गो: ग्‌-गो' आवाज निकाल रहे थे। जैसे ये तीनों चिड़ियों और हिंस्र जंगल की निर्मम आत्मा हों, जो जंगली प्राणी के समान आवाज निकालती हुई देवादिदेव को लक्ष्यहीन यात्रा पर लिये जा रही हो। गीले पत्तों के सड़ने से बनी कीचड़ में पैर धँसे जा रहे थे।

पैर धँसे जा रहे थे, पैरों को उठा-उठाकर वे चले जा रहे थे। त्रयोदशी का चन्द्रमा मेघाच्छादित था। किंतु मेघों के नीचे से छुपे चन्द्रमा से प्रकाशित आकाश के कारण अंधकार तरल था। पेड़ों के बीच में से कभी-कभी आसमान न दीखता तो देवादिदेव डर जाता। लक्ष्यहीन यात्रा थी। लेकिन सामने 'वहाँ' स्निग्ध मरण न था। यदि मृत्यु है तो वह भयानक है, क्रूर है। साँप की फुफकार, हाथी की सूँड और अगले ही क़दम पर गोली ! पुलकबाबू से दिशा भूलने की गलती कतई नहीं होती है। मोहित-दा ने कहा था कि हर जंगल, हर रास्ता उनका जाना हुआ है।

कब तक चलते रहे, पता नहीं। बीच में उन्होंने जंगल छोड़ दिया। एक आदमी पेड़ के नीचे से निकला। पेड़ से टिका हुआ भीग रहा था। दुबला-पतला, रूखा चेहरा। उसने पुलकबाबू से कुछ कहा। उसके बाद वे बायीं ओर मुड़ गये।

किसी समय जंगल विभाग द्वारा बनाये और अब बहुत दिनों से परित्यक्त, लकड़ी के लट्ठों पर बने एक मचान की पुरानी कोठरी में वे चढ़े। सीढ़ी नहीं थी। पेड़ की डालें काटकर कच्ची सीढ़ी बनायी गयी थी। सवेरा होने तक यहीं रहना था। देवादिदेव को पैर लटकाकर बैठना पड़ा। पुलकबाबू समेत कोई भी नहीं बोल रहा था। उस आदमी की जब से टीन की डिबिया ले पुलकबाबू ने खोली। एक बीड़ी निकालकर सुलगायी, एक देवादिदेव को दी।

कुछ देर बाद आसमान साफ़ हुआ। देवादिदेव नदी का गरजना सुन रहा था। वे लोग नीचे उतर आये। जंगल पार कर फिर तिस्ता। देवादिदेव की समझ में नहीं आ रहा था कि तिस्ता के किनारे से चहाड़-बुड़ि आकर, जंगल में घुसकर, इतना पैदल चलकर फिर तिस्ता का किनारा किस तरह आ गया है ? उसने एक बार पुलकबाबू की ओर देखा।

पुलकबाबू ने कहा—'चहारबुड़ि के बाद जंगल में घुसे थे और एक घुमावदार रास्ते से आगे थे।'

वे नदी के किनारे के जंगल में घुसे। पुलकबाबू ने कहा—'बड़ी सभा है। देखकर अच्छा लगेगा।'

—कब जायेंगे ?

—देव बाबू, पहले जोंकें छुड़ाइये।

इस बीच देवादिदेव ने पैरों की ओर देखा। डर से कँपा देने वाला दृश्य था। संथालों में एक संथाल नीचे बैठ गया। वह उसके पैरों से जोंकें छुड़ाने लगा। उसके पांव में ललछौंही, काली, फूली जोंकें लगी थीं। जोंक छुड़ाने में खून बहने लगा। पुलकबाबू नीचे बैठकर देवादिदेव के जख़्मों में चूना लगाने लगे। उसके बाद बोले, 'बालू पर जोंकें नहीं है। बैठिये, आराम कीजिये।' फिर वह अपने पैरों से जोंकें छुड़ाने लगे। बोले, 'चूना तगड़ा एँटीसेप्टिक होता है।'

पुलकबाबू की बात को झुठलाते हुए वर्षा थम गयी थी। वे पैदल चलते हुए एक गांव में घुसे। एक अहीर का मकान था। लगा कि पुलकबाबू इस गांव आते रहते हैं और यहां रुकते भी हैं।

चाय पीकर देवादिदेव की जान में जान आयी। छप्पर-छता घर था। बड़ा-सा। एक ओर लकड़ियों की आग पर दही जमाने के लिए दूध गरम हो रहा था। कोठरी बहुत गरम थी। पुलकबाबू और संथालों ने कपड़े सुखाये। धोती का एक छोर कमर में लिपटाये रखकर दूसरा छोर खोलकर सुखाया। देवादिदेव ने बरसाती पहनकर अपना कुरता, धोती और बनियान सुखाये।

यहां उन्होंने लाई और चाय ली और फिर आगे चले। इतना ज्यादा

पैदल चलने की आदत न होने से देवादिदेव का शरीर और पाँव दर्द से टूट रहे थे। दोनों कंधे दर्द कर रहे थे, पीठ दुख रही थी। जैसे कि सब-कुछ फटा जा रहा हो। बुखार-सा लग रहा था। फिर वे लोग चुपचाप चलने लगे। उसके बाद एक जगह से तिस्ता पार की। पुलकबाबू बोले—'आ पहुँचे, देवबाबू!' इसके बाद घनी आबादी वाला एक गाँव पार किया और फिर एक किसान के घर आराम किया। देवादिदेव नहाया नहीं। भात खाकर लेट गया। बीच में ही पुलकबाबू ने उसे उठा दिया। बोले—'चलिये, बहुत सो लिये। तीन बज गये हैं।'

—मीटिंग शुरू हो गयी?

—नहीं, चलिये।

—मीटिंग में चल रहे हैं न?

—नहीं, जलपाईगुड़ी लौट रहे हैं।

—क्यों?

—खबर आयी है कि उन लोगों ने उधर बेरीकेड[1] लगाकर लोगों को रोक दिया है। अलग-अलग जगहों से कम-से-कम चौदह-पंद्रह लोगों को पकड़ा है।

—चलिये।

देवादिदेव बिना विरोध के उठ खड़ा हुआ। पुलकबाबू बोले—'जिस राह से आये थे, उसी राह से नहीं लौटेंगे।'

—जाना है तो जाना ही होगा।—देवादिदेव आतरिक भलमनसी से बोला—'कल बहुत डर गया था, लेकिन चला तो आया, चल सकूँगा। चलिये।'

पुलकबाबू बोले, 'नहीं, खतरा उठाने में फायदा नहीं। चलिये, दूसरे रास्ते से लौटें। बड़े अच्छे रास्ते से ले चलूँगा।'

गाँव के दो आदमियों ने पुलकबाबू को बुलाकर कुछ कहा। पुलकबाबू बोले—'चले जाने को कहो। साइकिल लेकर चले जाओ।'

उसके बाद देवादिदेव से बोले—'चलिये, देर नहीं करेंगे। आपको

---

1. रोक, बाधा।

पहुँचाकर फिर लौटना है।'

—यहाँ ?

—नहीं, दूसरी जगह। और भी दूर।

—सच ?

—हाँ।

—मोहित-दा आपके बारे में बता रहे थे।

मचान पर से साइकिल उतारी गयी। तीन आदमी थे। कैरियर पर पुलकबाबू, देवादिदेव और एक सयाल को बिठाकर रवाना हुए। पुलकबाबू ने पुकारकर कहा—'आमनाटोकरी होकर आये थे, आमनापोखरी होकर लौटेंगे। आमनापोखरी आमनाटोकरी का जुड़वाँ जंगल है।'

तिस्ता के किनारे एक नयी जगह वे साइकिल से उतरे। बरसात नहीं थी। उफनी हुई नदी फैली जा रही थी। वे साइकिल लेकर एक नाव से पार हुए। आषाढ़ के दिन थे। चार बजते ही धूप आ जाती और सब मानो गरम होकर जलने लगते। वे कांस के जगल म घुस पड़े। कांस बड़ा ऊँचा-ऊँचा था। देवादिदेव ने कल जिस आदमी को देखा था, अचानक वही हलके-से सीटी बजाकर कहीं से निकल आया। इन लोगों को बुलाकर अंदर खींच लिया। पुलकबाबू से कुछ कहा। पुलकबाबू ने देवादिदेव का हाथ खींचकर भागने का इशारा किया।

वे लोग भागते रहे। सड़े पत्तों की कीचड़ में पांव धँसे जा रहे थे। पांव निकालकर भागना पड़ रहा था। जरूर कोई बड़ी बात है। जगल एक-से ही थे। लेकिन अब वे 'ख्-खोः, ख्-खोः' की आवाज़ करके सांप नहीं भगा रहे थे। वन विभाग की नहीं, लकड़ी के किसी ठेकेदार द्वारा बनायी गयी मचान सामने थी। वे मचान के नीचे चले गये। आजकल लकड़ियों को काटने का मौसम न था। मचान की कोठरी में ताला लगा था। नीचे बदन से बदन सटाये वे खड़े हो गये।

वह जगह तिस्ता से ऐसी कुछ ज्यादा दूर न थी। नदी की ओर से लोगों की आवाज, जीप की आवाज़ सुनायी दे रही थी। पुलकबाबू ने फुस-फुसाकर कहा, 'पीछे-पीछे आये हैं।'

वे लोग वहीं खड़े रहे। ऊपर बंद कोठरी के लकड़ी के फ़र्श पर किसी

चीज के गिरने की आवाज हुई। एक आदमी बोला, 'साँप चल रहा है।' लेकिन 'साँप' सुनकर देवादिदेव को इस समय कुछ न महसूस हुआ, बल्कि ऐसा लगा कि वह आतंकित नहीं है। पुलकबाबू पर बोझा न बनकर वह इसी तरह चल सकता है कि पुलकबाबू उसे पसन्द करने लगें। यह भी एक बड़ा लाभ हुआ।

इसी तरह वे खड़े रहे। शाम होने पर वहाँ से चले। आखिरी आदमी के हाथ में टॉर्च थी। डिस्पोजल से खरीदी हुई। टॉर्च की रोशनी जरूर कम थी। इस बार वे पगडंडी पकड़कर चले। सथाल लाठी ठोकते चल रहे थे। देवादिदेव की घड़ी में साढ़े बारह बज रहे थे। वे पहारखूड़ि जैसे एक गाँव में पहुँचे। एक खेतमजूर की बुढ़िया माँ की कोठरी में रात बितायी। सवेरा होते-न-होते वह व्यक्ति चला गया। देवादिदेव आदि इस गाँव से दस बजे निकले। तिस्ता के इस पार जंगल और नदी के बीच की पगडंडी का रास्ता पकड़कर वे थोड़ी देर चले और फिर एक जगह रुके रहे। थोड़ी देर में वह आदमी गाड़ी लेकर आया। वे लोग उसमें सवार हुए। उसके बाद तिस्ता पार कर जलपाईगुड़ी पहुँच गये।

हारूराय के घर पर ही पुलकबाबू भी रुक गये थे।

देवादिदेव का शरीर ट्रेन के हिलने से झोंके खा रहा था। याद है, सब-कुछ याद है। पुलकबाबू भी उस दिन रुक गये थे। गरम पानी में नमक मिलाकर नहाने से थकान खूब मिटती है। हारूराय की बहन अध्यापिका थी, कार्यकर्ता भी थी, लेकिन विधवा थी। खाने के बारे में पुलकबाबू से पूछ गयी। पुलकबाबू बोले, 'बंठि—केले के खंबे—के कोफ्ते, आलू का चोखा। बंठि को अच्छी तरह टुकड़े करके कोफ्ते बनाना।'

महिला खुश थी या नाखुश, समझ में नहीं आया। पर खाने वक्त कोफ्ता और आलू का चोखा देखकर देवादिदेव बोला—'कोफ्ता रसेदार होता है और चोखा सूखी तरकारी—मैं तो यह सब भूल ही गया था।'

हारूराय बोले—'सुना है कि आपकी पत्नी बहुत पढ़ी हुई है?'

—नहीं नहीं, ऐसा क्या कि...।

—खाना बनाती है?

—कम। वक़्त कहाँ मिलता है ! नौकरी, ट्यूशन...।

भोजन के बाद पुलकबाबू बोले—'आज रुक रहे हैं। ताश खेलिये, देवबाबू ! लेटे रहने से तबीयत ख़राब होगी। शाम को जल्दी खाना खाकर सो जाना।'

—आप लोग खेलिये। मैं देख रहा हूँ।

देवादिदेव आधी करवट लेकर चटाई पर पास ही लेटा रहा। वे लोग ताश खेलते रहे। लगता था, पुलकबाबू पक्के खिलाड़ी हैं। देवादिदेव का हाथ खिड़की की ओर फैला हुआ था। उसके हाथ में सौंफ थी। खाने के बाद मुँह ठीक करने के लिए।

लेटे हुए भी उसकी आँखें खुली थीं। वे ताश के खेल की ओर लगी थीं, लेकिन कान एक नवागंतुक की बातों की ओर लगे थे।

उस आदमी के घुसते ही हारूराय बोले—'मेरा साला है, देवबाबू ! डॉक्टर है। तबीयत ख़राब लगती हो तो बताइये। यह सब बीमारियों में मेपाक्रिन देता है।'

वह आदमी हँसने लगा। लगा कि यही बात कहकर हारूराय सबसे उसका परिचय कराता है।

वह आदमी बोला—'पुलक-दा दो दिन और रुक जाइये।'

—क्यों, पकड़ा दोगे ?

यह बात भी लोगों ने निश्चय ही बहुत बार सुनी थी। बोला—'उनको मालूम है कि आप लड़की के व्याह के बाद यहीं हैं। दो दिन ठहर जाइये, देखा जायेगा।'

—अनिल, कल जाऊँगा।

—आज भी जा सकते हैं।

—नहीं। दत्त आदमी बुरा नहीं है।

—घर नहीं चलियेगा ?

—चलूंगा, चलूंगा। तुम गये थे क्या ?

—हाँ। ताई ने घर जाने को कहा था।

—अभी आऊँगा।

देवादिदेव सुन रहा था। मुग्ध होकर पुलकबाबू को देख रहा था। यह

आदमी कितना शांत है ! इतनी उमर है, इतने दिनों तक राजनीति की है, शरीर भी उतना अच्छा नहीं है। देखने में भारी-भरकम होने में क्या होता है, सूझ-बूझ आश्चर्यजनक है। सुन रहा था, पुलकबाबू को देख रहा था। उस समय देवादिदेव की मानसिकता दूसरे ढंग की थी। एकदम भिन्न। अकाल के बाद से कई बरस इसी तरह बिता दिये थे। उसके मन में आ रहा था कि तिहैया की पृष्ठभूमि में इस व्यक्ति को नायक बनाकर एक जीवनीपरक उपन्यास लिखे। लगा कि उसके हाथ को जैसे किसी ने छुआ हो। आँखें तिरछी करके देखा, चटाई पर फैले उसके हाथ पर सौंफ है। एक गौरैया आती है। बैठती है, सौंफ लेती है और उड़कर खिड़की पर बैठ जाती है।

वह सोच रहा था कि जंगल में से गुजरते समय यह आदमी जंगल के साथ एकरस हो गया था। चहारबूड़ि में दूकानदार के परिवार के साथ भी एकरस हो गया था। उस अहीर, गाँव के उस किसान, वापसी में उस बुढ़िया के घर और अब यहाँ—सब जगह यह आदमी एकरस हो जाता है। रहता पुलकबाबू ही है, हर परिस्थिति को नियंत्रित भी करता है। स्वभाव में नेतृत्व सहज रूप से है। इसी स्वभाव में चलकर उन्नति की है। आश्चर्यजनक व्यक्ति है।

टेलीपैथी ! *पुलकबाबू ताश खेलते-खेलते बोले*—'जाते समय देवबाबू ने डर भर दिया है। उसके बाद से बिलकुल अजीब लग रहा है। नहीं मोशाय, इधर आकर आपने अच्छा किया।'

देवादिदेव को लगा कि पुलकबाबू ने उसके लिए अपने मन के कमरे का दरवाजा खोल दिया है। उसे बहुत गर्व महसूस हो रहा था। हाथ में चिड़िया फिर टकरा गयी।

—फिर आयेंगे।

—जरूर।

चिड़िया चुगने लगी। इससे पहले कि देवादिदेव को पता चले कि वह क्या कर रहा है, उसके हाथों ने पंजा बनकर, उसकी आश्चर्य-भरी अविश्वास-भरी आँखों के सामने, अनचाहे आवेग के वशीभूत होकर चिड़िया को दबा लिया। उसकी उँगलियों के दबाव से कोमल पंखों में ढँका गला

दब गया। चिड़िया की कोमल देह थोड़ा काँपी, उसके छोटे-से कलेजे में छटपटाहट हुई...उसके बाद चिड़िया लटक गयी।

तीन जोड़ी विस्फारित आँखें देख रही थीं। देवादिदेव अधलेटा था। हारुराय के साले के गले से कुछ अस्फुट शब्द निकला। पुलकबाबू की आँखों में घृणा, क्रोध और उपेक्षा थी। उनकी दृष्टि स्थिर थी।

देवादिदेव तभी भी अधलेटा पड़ा था। पुलकबाबू उठ खड़े हुए। बोले—'हारु, आज ही इन्हें वापस भेज दो। देवबाबू, आप इस सफ़र के बारे में एक पंक्ति भी नहीं लिखेंगे।'

बाद में पुलकबाबू ने मोहित-दा से कहा था—'उसके बारे में होशियार रहना। शक्ति पाकर वह दूसरों के लिए ख़तरनाक होगा। आदमी को पहचानने के लिए एक क्षण ही काफ़ी होता है, मोहित ! आदमी पहचानने में पुलक कभी ग़लती नहीं करता।'

पठानकोट-सियालदह एक्सप्रेस के झूले में झूलते-झूलते देवादिदेव को समझ आया कि अतीत की यह घटना किस प्रकार उनके व्यक्तित्व की व्याख्या और विश्लेषण करती है ? उस दिन की इस घटना से वह कहाँ व्यर्थ हो गया था ? आज वह समझ पा रहा था कि तमाम लोगों के कहने के बाद भी उसने तिहैया पर कोई उपन्यास क्यों नहीं लिखा। पुलकबाबू उस घटना के तीन बरस बाद मर गये। उस समय भी उसने कुछ नहीं कहा, न कुछ लिखा। आज कहा जा सकता है कि उनके मरने से उसे चैन मिला था। उसकी वह कमजोरी नहीं रही, जिसके प्रति अपने एक अमानुषीय आचरण के लिए वह सबसे अधिक लज्जित था। बड़ा चैन था।

अब लगा कि पुलकबाबू के व्यक्तित्व के एक कण को भी उसने अपने भीतर क्यों नहीं आत्मसात किया था। इसके पीछे यही घटना थी। इस घटना की अद्भुत, अनियंत्रित असहिष्णुता समझकर उन्होंने उसका परित्याग कर दिया था। वह यथाशक्ति अच्छा लिख सकता है, लेकिन बहिष्कृत होने की सामग्री उसके स्वभाव में, उसके रक्त में निहित है; यह बात पुलकबाबू समझ गये थे। इसीलिए देवादिदेव ने अपने अवचेतन में तिभागा, उत्तरी बंगाल के जंगल, पुलकबाबू—इन सारे विषयों को एक

तरफ़ रख दिया था। इन्हीं पुलकबाबू ने लेंडी कुत्ते के बच्चे को पीटने पर जलपाईगुड़ी के धनी सेठ के एकमात्र दुलारे बेटे को साइकिल से उतारकर बहुत पीटा था।

स्वीकृति ! अपने निकट अपनी ही स्वीकृति। उसके स्वभाव में, प्रकृति में एक विचित्र और जटिल द्वैत भाव था। द्वैत भाव के क्रम में ही निरापद आश्रय की तलाश, पलायनवादी साहित्य की रचना और बहुत सब-कुछ आता है, जिसने अपने तई प्रतिश्रुत, अपने प्रतिरूप को, अपने इमेज को यत्नपूर्वक सुआ और लकड़ी में, मिट्टी और रंगों में बना डाला था। गुड़ियों की तरह सजी मूर्ति में कहीं सांच मिटती है !

पुलकसिंह प्रतिमा बने ही हैं, उन्हें अपने-आप प्रतिष्ठा मिल रही है। प्रयत्न नहीं किया जाता। सभी उनका आह्वान करते हैं, वेदी पर स्थापित करते हैं। विसर्जन करने के बाद भी उन्हीं की पूजा अन्य रूपों में करना चाहते हैं। देवादिदेव जैसे लोगों को अपनी प्रतिमा की पूजा कराने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। इसीलिए शक्ति पाने का लोभ है, युवकों को विस्थापित करने की हरकत है। इसके बावजूद उनके निकट विश्वसनीय बनने की उत्कंठा, श्रद्धा पाने की व्याकुलता, उनका विश्वास प्राप्त करने की आकांक्षा भी है।

घर लौटना। खुद लगाया काँटा उखाड़कर फेंक दिया। अब कौन है? ईप्सिता। अंतिम युद्ध। देवादिदेव ने आँखें बंद कर ली। ट्रेन अंधकार चीरती चली जा रही थी।

ईप्सिता ! ईप्सिता बनर्जी। देवादिदेव ईप्सिता से अचानक शादी कर लेगा, किसी ने सोचा भी न था। खुद देवादिदेव को भी इसका पता न था।

ललिता भी नहीं जानती थी।

ललिता उससे प्यार करती थी। धनी बाप की बेटी, अत्यंत स्वतंत्र विचारों वाली, जो मन में आता वही करती थी। तीनों भाई उसे दुलार देते। वही उसके साथी और मित्र थे। देवादिदेव कहा करता था—'भाइयों

ने ही तुम्हारा दिमाग़ ख़राब कर दिया है।'

—दिमाग़ ख़राब करना क्या होता है?

—यही कि रात नहीं, दिन नहीं, मेरे साथ घूमती रहती हो, भाई लोग कुछ नहीं कहते!

—बेकार की बातें मत करो। वे क्यों कहेंगे?

—पूछते तक नहीं कि कहाँ जा रही हो?

—क्यों पूछें? मैं कहकर ही निकलती हूँ कि तुम्हारे काम से जा रही हूँ।

ललिता देवादिदेव के घर भी आती थी। रसोई में बैठकर बाम्हन दीदी से माँगकर चाय पीती थी। एक बार देवादिदेव घर पर नहीं था और ललिता आयी। पिता के लिए खाँसी की दवा लायी थी।

ललिता गाना बहुत अच्छा गाती थी। एक बार देवादिदेव के साथ एक मीटिंग में चली आयी थी। वहाँ एक गाना गाकर सबको ताज्जुब में डाल दिया था। सभी को पता था कि देवादिदेव ने ही ललिता को दल में खींचा है, देवादिदेव के व्यक्तित्व ने। अगर देवादिदेव और ललिता किसी दिन शादी कर लें तो यह स्वाभाविक ही होगा।

ललिता ने भी यही समझ लिया कि शादी होगी। दोनों ही जब स्वतंत्र हैं, अपने में पूर्ण हैं, तो देवादिदेव से उसकी शादी में कोई रुकावट न होगी।

ललिता सोचती थी कि वह जब देवादिदेव को जी-जान से प्यार करती है और देवादिदेव यह जानते हुए भी उससे मिलता-जुलता है तो निश्चय ही वह उससे प्यार करता है। उतना ही प्यार करता है जितना प्यार वह उसे करती है।

लेकिन उसे एक बात का पता नहीं था—वह स्वतंत्रचेता है, उसका व्यक्तित्व है। यही बात देवादिदेव के मन की अड़चन बनी हुई थी। यद्यपि ललिता कहती थी कि 'देव, मैं तुम पर निर्भर करती हूँ,' पर देवादिदेव ऐसा नहीं मानता था।

देवादिदेव को इस बात पर कतई विश्वास नहीं था। जो इतनी स्वतंत्रचेता है, जिसका ऐसा व्यक्तित्व है, वह देवादिदेव पर सम्पूर्ण रूप से

किस तरह निर्भर रह सकती है ? ललिता बहुत ही खुले स्वभाव की लड़की थी। कोई दुविधा, संकोच, डर उसमें न था।

देवादिदेव उसके मुँह से प्रेम की स्वीकारोक्ति सुनता। सुनकर उसे अच्छा लगता, लेकिन अंतरतम में कहीं उसे इस पर विश्वास न होता। अब देवादिदेव को महसूस होता है कि उस पर विश्वास न करना ग़लती थी। ललिता के प्रति उसने बहुत ग़लत काम किया। यही समझना ठीक होता कि ललिता सच कह रही है। उसका यह विश्वास करना उचित होता कि ललिता उसके मना कर देने पर सदा के लिए केंद्रच्युत हो सकती है। जीवन में इसी प्रकार होता है। कुछ लड़कियाँ इतना प्यार कर सकती हैं, उनका प्यार ऐसा सर्वग्रासी, अस्तित्वलोपी होता है, ऐसा शक्तिशाली होता है कि वे उस प्यार को वश में नहीं रख सकतीं। प्यार ही उनको नियन्त्रित करता है। बाहर से देखने पर लग सकता है कि इस लड़की के पास सब-कुछ है, लेकिन प्यार के अस्वीकृत होने पर ऐसी लड़की का जीवन व्यर्थ, अंधकारमय, केंद्रच्युत हो सकता है। देवादिदेव उस दिन यह बात नहीं समझ पाया था।

ललिता बहुत सहज रूप में कहती—'पता है, तुम्हें सुबह से नहीं देखा। अगर शाम को भी न देखती तो शायद मर ही जाती।'

बीच-बीच में वह देवादिदेव के चेहरे पर और हाथों पर हाथ फेरते-फेरते कहती—'मेरे सब-कुछ तुम्हीं हो, यह बात भूल न जाना।'

ललिता नहीं जानती थी कि उसके व्यक्तित्व का बाहरी रूप, अपने-आप में पूरा होने का भाव, आत्मनिर्भरता, स्वतन्त्रचेता होने जैसी बातें ही तो देवादिदेव के मन में रुकावट, बाधा खड़ी कर रही हैं। ललिता समझती थी कि वह उसके इन्हीं गुणों पर मुग्ध है और वह यह बात कहा भी करती थी कि 'मैं इन्हीं कारणों से तुम पर मुग्ध हूँ।' किन्तु उसने भीतर-ही-भीतर प्रतिरोध रच लिया था।

नहीं, वह ललिता से शादी नहीं करेगा, पहले से उसने इस विषय में कोई धारणा नहीं बना रखी थी। वह ललिता से ही शादी करता, यह बात ज़रा भी ग़लत न थी। देवादिदेव इतना हीन न था। वह ललिता से शादी करता, अगर ईप्सिता को न देख लेता।

किन्तु रक्त में मिली कुछ धारणाएँ क्या इसके लिए जिम्मेदार न थीं ? वह एक ऐसी लड़की की मन-ही-मन तलाश कर रहा था, ललिता में भी उसे ही खोज रहा था, जिसके मुंह से 'तुम मेरे सब-कुछ हो, भूल न जाना' सुनकर सहज ही विश्वास हो जाये। जब वह लड़की कहे कि 'देव, मैं तुम पर निर्भर करती हूँ,' तो उस पर क़तई अविश्वास न हो। वह लड़की ही उसके लिए एकमात्र नारी और देवादिदेव उसके पुरुष हो सकते थे। देवादिदेव उसे मुक्त रखेगा, आश्रय देगा, उस पर निर्भर रहेगा। वह ललिता से भी ऐसी बातें कहता। ललिता कहती, 'मैं वही लड़की हूँ, देव !' देवादिदेव का हृदय ललिता पर विश्वास करता, किंतु अंतरतम को विश्वास न होता। वह ललिता में ललिता जैसे चरित्र-गुण और मणिबाबू के प्रति उज्जवला भाभी जैसा निर्भर रहने वाला प्रेम—इन दोनों का समन्वय खोज रहा था। ललिता के सामीप्य से वह अपने को पुरुष समझता, किंतु एकमात्र पुरुष नहीं समझता। वह विश्वास करना चाहता कि ललिता के संसार का वह सूर्य हो सकता है, लेकिन विश्वास न कर पाता।

ललिता कभी नहीं समझी कि देवादिदेव के मन में उसके लिए कहाँ रुकावट है, कहाँ रोक लगी है ? जिस तरह आज देवादिदेव तैंतालीस-वर्षीय देवादिदेव को देख और उसका विश्लेषण कर रहा है, उस दिन नहीं कर सकता था। हाँ, ललिता मुझसे प्यार करती है, मैं उससे प्यार करता हूँ, हमारा संबंध बहुत ही मुक्त है। प्यार में भाटा आने पर दूसरा पक्ष उसे मुक्ति दे देगा—इस क़िस्म की बातें वे अकसर करते थे। ललिता कहती, 'ये सब बातें बेबुनियाद हैं। कभी ऐसा न होगा। मैं तुम्हें और तुम मुझे हमेशा प्यार करते रहोगे। हम एक-दूसरे से सदा प्यार करते रहेंगे।'

अशोक विश्वास। डॉक्टर, नम्र, शर्मीला और भला लड़का था। वह जब तक कलकत्ता में रहता, रोज़ शाम को चार से सात बजे के बीच कहीं गायब हो जाता। सब लोग कहते, प्रेम करने जाता है। अशोक विरोध न करता। हाँ या न, कुछ न कहता, सिर्फ़ हँस देता।

अशोक अकसर उससे कहता—'एक लड़की तुम्हारी रचनाओं की बहुत भक्त है।'

देवादिदेव उसमें मजाक करते हुए कहता—'आंखों से देखे बिना मानने को तैयार नहीं हूँ।'

—दिखाने में डर लगता है।

—क्यों?

—अगर तुम्हारे प्रेम में पड़ जाये तो?

—प्रेम! प्रेम के अलावा किसी और सहज संबंध के बारे में नहीं सोच सकते? मुझे तो चिढ़ होती है। लड़के-लड़कियों के बीच क्या कोई और संबंध नहीं हो सकता?

—नहीं होता है न।

देवादिदेव को उन दिनों लगा करता था कि क्रांति आ गयी है। नये समाज में स्त्रियों का नया परिचय होगा। पहले तो वे होंगी इंसान, उसके बाद स्त्री। उस समाज में प्रेम ही एकमात्र संबंध नहीं होगा। आज जीवन की संध्या में पहुँचकर लगता है कि प्यार किसी भी लड़की के जीवन में पहली और अन्तिम वस्तु बनकर रह जाता है।

अशोक उसे ईप्सिता के घर ले गया। देवादिदेव उस समय तीस वर्ष का था। ईप्सिता बीस की थी। ईप्सिता अपनी मौसी के साथ रहती थी, उसकी माँ नहीं थी। पिता सरकारी डॉक्टर थे। उस समय रिटायर हो गये थे। देवघर में एक छोटा-सा मकान खरीद लिया था। लड़की की शादी करनी थी। बाद में स्वयं देवघर में ही रहेंगे। ईप्सिता की मौसी कॉन्वेंट में पढ़ाती थी, उन्होंने शादी नहीं की थी। ईप्सिता को यत्नपूर्वक इंसान बनाया गया था। उनके घर जाते समय अशोक ने लज्जापूर्वक कहा था, ईप्सिता को वह बचपन से ही जानता है।

उन दिनों देवादिदेव का बड़ा नाम था। उसका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। उसमें आत्मविश्वास भी बहुत था। जहाँ भी जाता, औरों का सारा प्रतिरोध धूल में मिला देता और अपने व्यक्तित्व के पैरों तले रौंद कर उन्हें मुग्ध क्रीतदास बनाकर विजयी लौटता।

ईप्सिता, उसके पिता, उसकी मौसी मुग्ध हो गये थे। माइकेल से शरत्चन्द्र तक सबको देवादिदेव ने उस दिन ध्वस्त कर दिया था। बेशक आज वह देवादिदेव के उन दिनों के साहित्यिक विचारों पर विश्वास नहीं

करती। उन दिनों करती थी। ईप्सिता ने मुग्ध होकर आश्चर्य से उसे देखा, उसकी बातें सुनी थीं। जुही के फूलों-सी सफ़ेद, कोमल, कमनीय लड़की थी। निष्ठावान मौसी का उस पर प्रभाव था। खींचकर बाल बांधती, सफ़ेद साड़ी पहनती, चेहरे पर पाउडर न लगाती थी। उसकी उँगलियां बड़ी-बड़ी और कोमल थीं।

अशोक मुग्ध भाव से ईप्सिता की रोशन आंखों की तरफ़ देख रहा था। ईप्सिता बीच-बीच में अशोक की ओर देख लेती थी। देवादिदेव पर अचानक प्रकट हुआ कि अशोक ईप्सिता को बहुत अधिक प्यार करता है।

मिलना-जुलना, आना-जाना जारी रहा। तभी उसे लगा कि अशोक ईप्सिता के जीवन में नित्य का सत्य है। ईप्सिता ने उसे धूप और हवा की तरह स्वीकार कर लिया है। अशोक से ही सुना था कि प्रेम शब्द का उच्चारण उन दोनों के बीच कभी नहीं हुआ। फिर भी वे जानते थे कि किसी दिन वे दोनों शादी करेंगे। लेकिन इस बात से ईप्सिता के पिता खुश न थे। वह लड़की के लिए और भी अच्छा लड़का मिलने पर खुश होते।

देवादिदेव उस समय अपने को बहुत योग्य समझता था। ईप्सिता को देखते ही जान गया था कि यही वह लड़की है, जो उज्ज्वला भाभी की तरह अपने पुरुष पर निर्भर करेगी। तभी उसने चाहा था कि अगर ईप्सिता उसकी पत्नी हो तो अच्छा रहेगा।

लेकिन आज जानता है कि ईप्सिता से विवाह की अपेक्षा उस समय उसके मन में एक और प्रबल इच्छा बलवती थी—युवा अशोक की आंखों में उमगते प्रकाश को समाप्त करने की इच्छा। उसने यह भी नहीं जानना चाहा कि ईप्सिता को वह भी पसंद है या नहीं? वह यह सोच भी नहीं सकता था कि वह जिस लड़की को चाहे, वह किसी और को भी चाह सकती है।

'तुम्हें प्यार करती हूँ'—ये दो शब्द कहलाने के लिए उसने ईप्सिता के मन में आंधी उठा दी थी। ईप्सिता उलझन में पड़ गयी थी। उसने उसके पिता को बिलकुल मुग्ध कर दिया था। ललिता से भी कुछ कहने की जरूरत है, उसने यह सोचा ही नहीं। मन में न आया हो ऐसा नहीं, लेकिन ईप्सिता को देखने के बाद से उसके मन ने ललिता को अस्वीकार

करना शुरू कर दिया था, तभी देवादिदेव को प्रकट हुआ कि उसे ललिता से कितना कम प्यार था। इस बहाने से उसने अपने को समझा लिया था। जिसे इतनी सरलता से अस्वीकार किया जा सकता हो, उसके प्रति प्यार सच्चा प्यार नहीं है। ईप्सिता को पाने के लिए मुझमें जो प्रबल तृष्णा है, वह ललिता को पाने के लिए मैंने कभी अनुभव नहीं की। प्रेम में उतार आने पर वह उसे छुटकारा दे देगा। इसलिए जब मैं छुटकारा चाहता हूँ तो ललिता भी मुझे मुक्ति दे। मैं ललिता के प्रति कोई अपराध नहीं कर रहा हूँ। ललिता से उसने यही बात कही थी।

ललिता सफ़ेद पड़ गयी थी। स्वभाव के विरुद्ध डरी हुँसी हँस कर बोली थी—'तुम जरूर मजाक कर रहे हो!'

सोचकर आज भी व्यथा होती है, पीड़ा होती है, दुःख होता है। ललिता किसी तरह से भी विश्वास नहीं कर पा रही थी कि देव उसके साथ सब संबंध तोड़ ले रहा है। वह कई बार उसके पास आयी थी। अनेक बार। कहती थी, 'कह दो, यह दुःस्वप्न है। कह दो, देव, कि यह दुःस्वप्न मिट जायेगा। मैं तुम्हें देखे बिना कैसे रहूँगी—एक ही शहर में, एक ही समय में? तुमने मेरा ऐसा सर्वनाश क्यों किया?'

उसके लिए ललिता इस तरह टूट जायेगी, यह देखकर एक ओर उसका अहं संतुष्टि पा रहा था तो दूसरी ओर उसे अपनी शक्ति का भान हो रहा था। वह उसे बहाने बनाकर समझाता। देवादिदेव उससे कहता, 'कैसे ताज्जुब की बात है, व्यक्तिगत संबंध के बिना दोस्ती का भी संबंध कैसे नहीं रहेगा?'

ललिता ने शून्य दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा। बोली—'बहुत रो चुकी। अब न रोऊँगी। तुम यह क्या कह रहे हो, देव?'

—ठीक नहीं कहा क्या?

ललिता घायल पशु की तरह कराहकर बोली—'तुम्हें सब लोगों के बीच देखूँगी, बात कर चले जाओगे?'

—क्यों नहीं? सीन करोगी—तमाशा? छिटककर निकल जाओगी?

—तुम क्या इंसान हो, देव? किससे बात कर रहे हो? तुमको देखूँगी, चली जाऊँगी? मैंने तुमको जीवन-सर्वस्व बना लिया था। तुम्हें देखकर

यह नहीं लगेगा कि इस छाती पर मेरा सिर रहा है, इन उँगलियों ने मेरा सिर, मेरा चेहरा, मेरा माथा सहलाया है। किसी अस्वाभाविक, निष्ठुर कुभावना के कारण तुम मेरे न हुए, यह बात मैं सहन कर पाऊँगी ?

—ललिता, ऐसी बातें मत करो।

—ईप्सिता तुम्हारे मन में अनुभूति जगाती है, उसकी तुम्हें जरूरत है। नहीं देव, नहीं। तुम्हारे बिना उसका जीवन चल सकता है, मेरा नहीं चलेगा। तुमको यह मालूम था। तुमने जान-बूझकर मुझे अंधकार में छोड़ा है।

—नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है, ललिता !

—सोचने में बुरा लगता है ? तुम्हारा जो अहंकार है, उसके कारण तुम मुझे छोडकर जाना चाहते हो। फिर तुम अच्छे आदमी हो, सहृदय, महान विवेचक, हृदयवान—इस इमेज को भी अटूट रखना चाहते हो, यही न ?

—मैं बुरा आदमी नहीं हूँ, यह तुम एक दिन समझ जाओगी।

ललिता मुंह ढंके लेटी हुई थी। उसने उठकर आँचल समेट लिया। उँगलियाँ जोड़कर अपना हाथ देखा। लगा कि सारा कुछ उसका अपरिचित है। उसके बाद बोली, 'जाओ, ईप्सिता से शादी करो। मैं समाप्त हो गयी। मेरा सारा जीवन तुमने हमेशा के लिए नष्ट कर दिया, यह बात तुमको सताती रहेगी, ताकि तुम भूल न सको। लेकिन कह किससे रही हूँ ? तुम्हारे हृदय है ? तुम्हारे हृदय नहीं है, देव ! तुमने जो कुछ किया, उसके बाद यह न कहना कि तुम्हारे पास हृदय है। मैं चली, वायदा किये जा रही हूँ कि मुझे कहीं नहीं देख पाओगे। मैं तुम्हारी जैसी नहीं हूँ। सब-कुछ सहूँगी। मुझे मिटाकर भी तुम सुखी रह सकते हो। मैं भीरु हूँ, कायर हूँ, मुझसे सहन न होगा। अपने ऊपर मुझे इतना विश्वास नहीं है।'

देवादिदेव ने उस दिन भी ललिता पर विश्वास नहीं किया।

देवादिदेव ने ईप्सिता से विवाह किया।

ललिता की बात मुंह फेरकर सुन ली।

ललिता अचानक ओट में चली गयी। कहीं जाती न थी। जहाँ जाने से देवादिदेव से भेंट हो सके वहाँ तो कतई नहीं जाती थी। न तो सड़क पर, न ट्राम में, कहीं भी नहीं। देवादिदेव को वह बहुत दिनों तक दिखायी न दी।

औरों ने देखा था। ललिता दूसरे रास्तों पर चलती थी, पैर घसीट-घसीटकर चलती रहती। मिन्टो पार्क में, विक्टोरिया स्क्वायर में अकेली बैठी रहती। चिड़ियाघर में पेड़ के नीचे तब तक अकेली बैठी रहती जब तक कि माली आकर न कहता, 'बंद हो गया, उठिये दीदी!'

देवादिदेव ने सुना था कि उसे 'हे फीवर' हो गया है। बहुत दिनों तक बीमार रही। उसके बाद रेडियो में नौकरी कर वह दिल्ली चली गयी। देश आज़ाद होने के बाद विलायत चली गयी। विलायत में उसने एक भले-मानस मराठे से ब्याह कर लिया। भले आदमी को विलायत में छोड़कर भारत चली आयी। शरीफ़ आदमी की मृत्यु हो गयी। ललिता बहुत ही शांत, गंभीर, सदा उदास रहने लगी थी। चेहरा पत्थर-सा लगने लगा था। पहचानने में भी न आती थी।

इतने समय बाद, इस बार कलकत्ते आने से पहले, देवादिदेव जब दास-विग्रत था, एक दिन न्यू मार्केट में उससे भेंट हो गयी। ललिता मार्केट के अंदर से शॉर्ट-कट लेकर पैदल जा रही थी। सफ़ेद उजले बाल गोलकर बाँधे हुए। दुबली-पतली, सीधी-तनी देह। आँखों में मोटे काँच का चश्मा। लेकिन ललिता ही थी।

देवादिदेव के सामने ललिता खड़ी थी। बोली 'इतने कमज़ोर हो गये हो? बीमार थे क्या?'

—तुम भी तो कितनी बदल गयी हो? सारे बाल सफ़ेद हो गये हैं।

—वह तो बीस बरस पहले ही हो गये थे।

—बीस बरस!

—हाँ।

देवादिदेव ने मन-ही-मन हिसाब लगाया, चालीस के पहले ही ललिता के बाल पक गये। शायद पैंतीस में ही।

—अच्छी हो?—देवादिदेव ने पूछा।

—नहीं। सोशल टॉक, तकल्लुफ़ की बातें मत करो। इससे तो तुमको बेचैनी होती है।

—तुम कैसी हो?

—चल रहा है।

ललिता के भीतर से असीम अनुकंपा प्रस्फुटित हो रही है, देवादिदेव को महसूस हो रहा था।

ललिता अजनबी, धीमी, थकी आवाज़ में बोली—'तुम ठीक नहीं हो, ईप्सिता अच्छी नहीं है, मैं बरसों से अच्छी नहीं हूँ। हम ही अपरिचित नहीं हुए, तुम भी हो गये हो, देव! हालाँकि तुम मानोगे नहीं, क्योंकि मान लेने पर यह भी मानना पड़ेगा कि तुम हार गये?'

—यह सब क्या कह रही हो, ललिता?

—देव, हार नहीं गये? बिना हारा आदमी ऐसा कूड़ा लिख सकता है, जो तुम लिख रहे हो?

—तुम मेरा लिखा पढ़ती हो? तो सुनो, क्या सारा लिखा अच्छा होता है?

—पढ़ती हूँ। मानें दस बरस नहीं पढ़ा। 'नगर नागरी' पढ़ने के बाद तुम्हारा लिखा पढ़ने में बेकार की मेहनत लगती थी। देखा, बाईस बरस पहले जिस पतन की शुरुआत हुई थी, वह अब पूरी हो गयी।

ललिता की आवाज अजनबी लग रही थी, जैसे किसी तीसरे व्यक्ति के बारे में चौथे व्यक्ति से कुछ कह रही हो।

—वह सब बातें छोड़ो।

—ठीक है, छोड़ो।

माथे पर बल डालकर उसने कुछ देर देवादिदेव को देखा। बोली, 'सोचो मत, पुराना कुछ भी नहीं बचा है। सब जलकर राख हो गया है, देव! कुरेदने पर आग की एक चिनगारी तक भी नहीं मिलेगी। लेकिन कैसी बेकार की बातें हैं ये भी? मैं व्यर्थ हो गयी, तुम सारी सफलताओं के बाद भी इंसान के रूप में व्यर्थ हो गये। ईप्सिता भी निश्चय ही व्यर्थ हुई। बीच-बीच में उसके बारे में सुना था। कभी-कभार दूर से देखा भी। लेकिन किसी की आँखों में ऐसा निःसंग, डरावना अकेलापन नहीं देखा।

लगता है तुम उसकी आँखों की ओर नहीं देखते हो ?

—उन सब बातों को छोड़ो, ललिता !

—बताओ तो, ऐसा क्यों किया था ? यही जानने की सबीयत होती है।

—ललिता ! मैं...मैं...!

—नहीं न, देव ! मत बोलो। तुम्हारा आचरण गमन था। उसे तुम बहुत जल्दी समझ गये। लेकिन ईप्सिता स्त्री-गुणों से भरपूर स्त्री है, इसीलिए उसे नहीं छोड़ा। बच्चों की भी बात जरूर सोची होगी। समझे थे कि मैं तुमसे झूठ बात कहूँगी। कोई तुम्हारी तरफ़ देखता रहे और वह मैं होऊँ—यही सोचा था न ?

—बताओ, क्या कहूँ ? तुमने सब-कुछ तो कह दिया।

ललिता ने सिर हिलाया, माथे पर से सफ़ेद बाल हटाये। अजनबी आवाज में बोली—'लेकिन इस मुलाकात की जरूरत थी। कभी प्यार किया था, इसलिए मेरी स्मृति तुम्हें सताये। आज कह रही हूँ, मैं तुमसे प्यार नहीं करती, लेकिन तुम्हारे लिए मैंने किसी और को भी प्यार नहीं किया। एक बड़े अच्छे आदमी को दुख दिया था, खुद भी व्यर्थ हुई। इसका कारण भी तुम्ही थे। वह तुम्हें नहीं पहचानता, तुम ही परोक्ष से उसके दुख का कारण बने। देव, आज इस उम्र में वे बातें तुम्हारे शेष जीवन को बेधती रहें, यही चाहती हूँ। तुम जानते हो, तुमने अन्याय किया था। मुँह से तुम चाहे जो भी कहो, वास्तव में तुम स्वार्थी हो, आत्म-केंद्रित, हृदयहीन हो।'

ललिता चली गयी। देवादिदेव को अकिंचन, अभागा बनाकर चली गयी। ललिता की आँखें, स्वर, बातों ने देवादिदेव के अंदर दरार डालकर बैठा दिया था। प्यार किसी को इस प्रकार नियंत्रित करता है ? प्रेम व्यर्थ होने पर क्या कोई इस प्रकार केंद्रच्युत हो जाता है ? देवादिदेव को डर लग रहा था। वह क्या है ? इंसान नहीं, पूरा इंसान नहीं, वह केवल स्वप्न ही कर सकता है ?

पठानकोट एक्सप्रेस सियालदह की ओर बढ़ती जा रही है तो आज सबसे पहले ललिता की बात ही देवादिदेव को याद आयी है। हाँ, पर

लौटने का अर्थ अगर किसी अक्षमता और व्यर्थता को मानसिक अक्षमता, मानसिक व्यर्थता मानकर स्वीकार किया जाये और इसीसे अपने को शुद्ध-स्वच्छ मान लिया जाये तो ललिता के बारे में सबसे पहले सोचना होगा। उसके जीवन की धारा ललिता के समय से दुविधा में पड़कर लक्ष्यभ्रष्ट होती गयी है। बलवंत और पुलकबाबू के समय में वह धार और बँट गयी। उसके बाद वह धारा नदी के मुहाने की तरह बढ़ी। बहुत-से द्वीप रचती हुई, तोड़ती हुई बही।

द्वीप तो एक-दूसरे से पृथक-पृथक रहते हैं। लेकिन हर धारा एक ही सागर की ओर उन्मुख होती है। वह सागर देवादिदेव बसु था। जिस तरह समुद्र सारी नदियों की धाराओं का जल लेकर पुष्ट होता है, देवादि-देव के जीवन ने भी उसी प्रकार बहुत-से स्रोतों से बहकर आये जल से अपनी भावमूर्ति को पुष्ट किया था। लेकिन उससे उसे क्या लाभ हुआ? उस जल से तो किसी की तृष्णा भी नहीं मिटी? वह जल खारी, कड़वा, जहरीला था।

पहले ललिता, बाद में ईप्सिता। किंतु अंत में सबसे बड़ा अपराध उसने शायद ईप्सिता के प्रति ही किया है, आज यही महसूस हो रहा है। इसी से शुद्ध, मुक्त होकर ईप्सिता के पास लौटने, अपने ही घर लौटकर आने की यह आकुलता है। अब किसी प्रलोभन के आगे हार नहीं माननी है, किसी चीज की इच्छा भी नहीं करनी है। पत्नी और बेटों के साथ फिर से संबंध जोड़ेगा। पूरी ईमानदारी से लिख सका तो लिखेगा, वरना नहीं लिखेगा।

उसने ईप्सिता से शादी की थी।

ईप्सिता ने अशोक से कहा था—'तुम तो क्षण-भर में इस समस्या का समाधान कर सकते हो।'

नहीं, अशोक समाधान नहीं कर सकता था। उस समय वह पूरे समय के लिए पार्टी का काम करता था। डॉक्टर को उस समय बहुत काम थे। बयालीस के आंदोलन और तैंतालीस के अकाल से संकटग्रस्त बंगाल में डॉक्टरों का काम बहुत बढ़ गया था।

अशोक ने अपने कोमल स्वर में कहा था—'अभी तो वक़्त नहीं है।'

—तुम्हें कब वक़्त मिलेगा?

—अभी कैसे बता सकता हूँ?

—लेकिन अब वक़्त कहाँ है, अशोक?

—अभी तो मैं गाँवों में काम करने जा रहा हूँ, ईप्सिता!

—बताओ, मैं क्या करूँ?

—क्या बताऊँ? मेरी हालत का तो तुम्हें पता है।

—अशोक, मुझे छोड़कर तुम अच्छी तरह से रह सकोगे?

ईप्सिता ने यह बात बहुत दुख के साथ कातर होकर कही थी। क्या अशोक को लगा था कि देवादिदेव ने शादी को टाल दिया है, तो वह निश्चय ही ईप्सिता से शादी करेगा? देवादिदेव ने ईप्सिता को सविता की बात नहीं बतायी है, क्या उसे पता था?

अशोक ने धीरे-से कहा था—'मैं रह लूँगा।'

अशोक ने क्या यही सोचा था कि क्रांति आ रही है, वह प्रतिबद्ध कार्यकर्ता और सैनिक है! व्यक्तिगत जीवन को समर्पित करने में वेदना है, व्यर्थता नहीं। उसने ईप्सिता को समझाया था कि वह जिससे मन से शादी करने को तैयार हो, उसी से करे। इस तरह से उसने उसकी सहायता की थी।

उसने ईप्सिता से बहुत कुछ कहा था : देवादिदेव बहुत ऊँचा आदमी है। वह महान प्रतिभाशाली लेखक है। वही इस देश का अलेक्सी तोल्स्तोय और शोलोख़ोव है। उसका आचार-व्यवहार देखकर कोई और निर्णय लेना ग़लती होगा। ईप्सिता अगर उससे विवाह करती है तो परोक्ष में एक महान आदर्श की सहायता करेगी।

ईप्सिता ने कहा था कि वह राजनीति नहीं समझती।

अशोक ने समझाया कि इस विवाह से तुम में भी सार्थकता-बोध पनपेगा।

राम का सेतु देखकर गिलहरी के सार्थकता-बोध की तरह?

हो सकता है, वही हो।

अशोक ने झूठी सान्त्वना नहीं दी। ईप्सिता साधारण इंसान थी, अशोक

है। ईप्सिता को धोखा नहीं दिया जा सका है।

लेकिन आज देवादिदेव को सब मालूम हो गया है। अपना स्वरूप जानने के लिए भीतर के सभी प्रतिरोधों को तोड़कर उसने अपने को देखा। अपने उत्स को लौट आया है। अपने-आप बोये राह के सारे कांटों को उसने हटा दिया है। इस कर्म में वह खून से लथपथ हो गया था। लेकिन उसने हथियार नहीं डाले।

आज उसे मालूम था, उसने किसी दिन भी कोई प्रतिबद्धता भंग नहीं की, बेईमान-अविवेकी नहीं हुआ। चरित्र और स्वभाव में सब चीजों का बीज रहता है। स्वभाव पहले फूल के पौधे पालता है, फिर खरपतवार को। खरपतवार बढ़कर एक दिन फूल के पौधे को ढँक लेते हैं। देवादिदेव किसी दिन भला था, उसके बाद प्रलोभन में, शक्ति के लालच में, साहित्य-रचना में व्यर्थ होकर, धीरे-धीरे घर का रास्ता छोड़, बाहर के रास्ते पर कदम रखा। उसी की परिणति आज का देवादिदेव बसु है।

हाँ, वह सब कहेगा। कोई पुरस्कार और सम्मान न लेगा। फिर नये सिरे से आत्मकथा लिखेगा। ललिता, बलवंत, ईप्सिता, पुलकबाबू, शंकर-दयाल—सबकी बात लिखेगा। उसी दिन वह श्रद्धेय बनेगा, लोग उसे याद रखेंगे। ईप्सिता को उससे इसी की अपेक्षा है।

दूसरे दिन पठानकोट एक्सप्रेस सियालदह पहुँची।

स्टेशन पर सभी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे—दिलीपचन्द्र भास्कर, मनीषी सेन, अरुणिम दास, केकय कोहेन। और भी बहुत-से लोग थे। सोमेश के हाथ में कैमरा था। गोपाल पीछे से चिल्ला रहा था। उसे देखकर सब शोर करते हुए आगे आ गये। सबसे पीछे ईप्सिता खड़ी थी। अकेली, उसकी ओर देखती हुई।

—आ गया, आ गया। सब शोर मचाते हुए आगे बढ़ गये।

—क्या हुआ?

—तुमको पुरस्कार मिला है। देखो! ग्रेटेस्ट ऑनर—सबसे बड़ा

सम्मान !

—मुझे ?

—हाँ, तुम्हें।

—मुझे ?

देवादिदेव हँस पड़ा। सब उसके गले लग रहे थे।

गोपाल बोला, 'भाभी ने टेलीग्राम नहीं किया ?'

—हाँ, हाँ, वही पाकर तो...।

केकय बोला, 'बहुत तूफ़ान मचेगा।'

देवादिदेव बोला, 'वह तो मचेगा।'

कहते-कहते उसके अंदर कुछ फूटने-सा लगा। काँटे-सा तीखा, नुकीला। किसी चीज की दीवार खड़ी थी। दुख, भयानक दुख। किन्तु दुख क्यों हो ? नहीं, नहीं, खुश होना चाहिए। तीव्र अनुभूति के समय सुख और दुख एक-से होते हैं। किन्तु कहीं जैसे एक लड़का पद्मा के पार के दिगन्त-व्यापी मैदान के विस्तार का सिरा पकड़कर घर लौटना चाह रहा है। वह देख रहा है कि रास्ते को रोककर तलवार के फलकों की तरह तेज पत्तों के पेड़ उग आये हैं। बहुत सुंदर। इसी को आधार बनाकर देवादिदेव एक सुंदर-सी कहानी लिखेगा।

—चलो, हमारे साथ चलो।

—घर जाऊँगा।

—अरे, हम ही तुमको ले चलेंगे।

—ईप्सिता ! ईप्सिता, आगे आओ।

—पहले एक तसवीर उतार लें। भाभी, आइये। एक साथ फ़ोटो लूँगा।

देवादिदेव ने चेहरा ऊपर उठाया। ईप्सिता ने उसकी आँखों में आँखें डालीं, पीछे घूमी, उसके बाद सीधे चलने लगी।

गोपाल बोला, 'क्या हुआ ? भाभी चली जा रही हैं !'

देवादिदेव के चश्मे के नीचे से थोड़ा जल टपक पड़ा। उसके मित्र भौंचक्के होकर चुप रह गये। सोमेश ने शटर दबाया, फ्लैश बल्ब की रोशनी हुई। '—' पाने के बाद देवादिदेव की आँखों में आनन्दाश्रुओं का

अवश था।

देवादिदेव बहुत देर तक कुछ न बोल सका। उसे लगा कि उसके जीवन का कोई भी अध्याय पूरा नहीं हुआ। घर लौटना न हुआ। कुछ भी शुरू न हुआ। उसने घर लौटना चाहा, यह सच था। लौट नहीं सका, लौटना चाहा नहीं, यह भी उतना ही सच था। वास्तव में, जीवन में आरंभ, मध्य और अंत एक साथ चलते हैं। देवादिदेव तीन बिंदुओं के बीच में कमरे के आगे खड़ा रहा। जीवन ऐसा ही होता है। सदैव। भागने की कोई राह नहीं होती।